निवेदन करता हूं कि आपने जो काम मुझे सौंपा है वह बड़े महत्त्वका है, उसे मैं अकेला हर्गिग नहीं कर सकूंगा। इसलिए आप सब सज्जन मुझे इस काममें सहायता दें। यह आप अच्छी तरह जानते हैं कि जिस कामको सम्मिलित शक्ति कर सकती है उसे एक शक्ति कदापि नहीं कर सकती। सम्मिलितशक्ति—एकता—का कितना प्रभाव है वह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। यदि आप ध्यान देंगे तो जान पड़ेगा कि जिन देशोंने, जिन जातियोंनें मिल कर काम किया है वे सदा उन्नत होते गये हैं। इतिहास इस बातको स्पष्ट कहता है कि भारतवर्षके अधःपतनका कारण क्षत्रियोंकी परस्परकी फूट है। यदि उनमें यह राक्षसी शक्ति प्रवेश न करती तो आज देशको ये दुर्दिन भी नहीं देखना पडते। हमारी जातिके ऱ्हासका भी यह एक प्रधान करण है जो हममें एकता नहीं है। अस्तु। मैं आशा करता हूं कि आप सम्मिलितशक्तिको एक प्रबल शक्ति समझकर इस जातीय काममें उसीसे काम लेंगे।

इस स्थानपर एकत्रित होनेका कारण आप लोंगोको समाचार पत्र द्वारा अवगत हो चुका है। जातिसुधार सम्बन्धी विचार करना हमारा प्रधान लक्ष्य है और यही कारण यहां एकत्रित होनेका है। हमारी जातिकी हालत बहुत दिनोंसे गिरती गिरती आज यहांतक पहुंच चुकी है कि यदि उसके उठानेका प्रयत्न जल्दीसे न किया जायगा तो संभव नहीं कि संसारमें वह बहुत समयतक जीती बची रहेगी। संसारकी सब जातियां जग चुकी हैं और अपनी अपनी उन्नति करनेके लिए जी जानसे प्रयत्न कर रहीं हैं। पर हम जैसे थे वैसेके वैसे ही अब भी बने हैं। हममें कुछ भी नवीनता नहीं

गई है। जमाना कैसा है? वह किस प्रवाहमें बह रहा है? इस समय हमारा कर्तव्य क्या है? कैसे हमारी स्थिति चिर दिनतक टिक सकेगी? इन बातोंपर हमारा ध्यान बिल्कुल आकर्षित नहीं होता। संसारकी जातियोंमें हमारी जातिको छोड़कर शायद ही कोई ऐसी जाति दीख पड़ेगी जो उन्नतिका नाम सुनकर दूर भगती हो? पर अब इस अज्ञानको हमें छोड़ना होगा। यह युग उन्नति शील है। हमें भी अपनी प्रवृत्ति इसे देखकर करनी होगी, ज्ञानरूपी प्रकाशसे अज्ञानरूपी काले काले घनघोर बादल नष्ट करने होंगे। यही हमारे चिरदिन संसारमें टिकनेका प्रधान उपाय है।

शिक्षा प्रचारकी जरूरत

मैं जब और और जातिकी उन्नतिके कारणोंपर विचार करता हूं तो मुझे उनके उन्नत होनेका कारण बड़ी तेजीके साथ होनेवाला उनमें विद्याका प्रचार जान पड़ता है। मैं नहीं कह सकता कि ऐसी बुद्धि हम लोगोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होती? क्यों हमें अपनी पतित हालत पर खेद नहीं होता? हम संसारकी गतिको जान कर भी अपनी जातिके सुधारका उपाय नहीं करते। हमारी इस गफ्लतीका कुछ ठिकाना है? हम जब अपने सुधारकी ही चेष्टा नहीं करते तब औरोंका क्या सुधार कर सकेंगे? हमारी प्यारी संतान शिक्षाके बिना मारी मारी फिरती है, पर हमें उसपर दया नहीं आती। हमारा दया धर्म जब हमारे बालकोंके लिए ही काम नहीं आता तब उससे औरोंके उपकारकी क्या आशा की जा सकती है? इसका कारण यह कहा जा सकता है कि हममें जातीयभाव—जातीयप्रेम—नहीं है। हम उन्हें अपने नहीं समझते। पर यह हमारी नितान्त

गल्ती है। हमें अपनी जातिकी ही नहीं किन्तु देशभरकी सन्तानसे उतना ही प्रेम करना चाहिए जितना कि खास अपनी सन्तानसे करते हैं।

शिक्षाप्रचारके लिए अब हमें सब तरह तैयार हो जाना चाहिए। जातिकी उन्नतिका सबसे प्रधान यही एक उपाय है। इसके लिए हमें प्रत्येक शहर वा गावोंमें, जहां कि खण्डेलवालोंकी वस्ती है, खास प्रयत्न करना उचित है। हमें इस समय दोनो अर्थात्—लौकिक और पारलौकिक—धार्मिक—विद्याका प्रचार करना आवश्यक है। लौकिकविद्याके लिए जहां जहां सरकारी स्कूल हैं उनमें अपने बालकोंको भरती करवाना चाहिए और जहां सरकारी स्कूल न हो वहां प्राइवेट ऐसी पाठशालाएं खोलनी चाहिएँ जिनमें पहले मातृभाषाकी शिक्षा दी जाया करे। बहुतसे स्थानोंपर ऐसा देखनेमें आता है कि हमारे भाई आरंभमें बालकोंको मातृभाषाकी शिक्षा न देकर उन्हें दूसरी ओर झुका देते हैं। पर यह ठीक नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि वे फिर व्यवहारिक विषयसे निरे शून्य रह जाते हैं। उनमें इतनी योग्यता भी नहीं आती कि वे अपनी मातृभाषामें कुछ शुद्ध रीतिसे लिख वा पढ़ सकें। हमारा पहला यह कर्तव्य होना बहुत जरूरी है कि हम कमसे कम अपनी सन्तानको इतनी योग्य तो बनादें जिससे कि उसकी योग्यता मातृभाषाके ज्ञानमें अच्छी होजाय। आज यदि हम यह बात देखना चाहें कि हमारी जातिमें ऐसे कितने मनुष्य हैं जो अपनी मातृभाषाका मिडिलक्लास भी पास किये हुए हों तो मुझे जहांतक विश्वास है हमारे प्रान्तभरमें तो उंगलियोंपर गिनने लायक शायद ही निकलेंगे। जब हममें अपने मातृभाषाके ज्ञानकी, जिसका कि होना बहुत आवश्यक है, यह हालत है तब

धार्मिक ज्ञान आदिके सम्बन्धमें तो हम क्या कहें ? मातृभाषाका कितना माहात्म्य है यह बात जापानका इतिहास पढ़नेसे बहुत जल्दी ध्यानमें आ सकती है ।

मातृभाषाके प्रचारके लिए हमें एक और उपाय करना होगा। वह यह कि जिन छोटे छोटे गांवोंमें सरकारी स्कूल नहीं हैं वहांके रहनेवाले बालकोंको उस जगह पढ़नेको भेजना चाहिए जहां सरकारी स्कूल हों और ऐसे विद्यार्थियोंके रहने आदिका खास हमें अपनी सभाकी ओरसे प्रयत्न करना चाहिए वा स्थानीय भाइयोंके द्वारा प्रेरणा करके करवाना चाहिए। रही धार्मिक विद्याकी बात, सो इसके लिए एक ऐसा बड़ा जातीयविद्यालय खोलना चाहिए जिसमें धार्मिक विद्याका और उसके साथ साथ ऊंचे दरजेकी लौकिकविद्याका पूर्ण प्रबन्ध हो । उसमें वे ही विद्यार्थी भरती किये जायँ जो अपनी मातृभाषाका मिडिलक्लास पास किये हुए हों या उतनी योग्यता रखते हों। जब हम ऐसा प्रबन्ध कर सकेंगे तब ही हमारी इच्छाके अनुसार विद्यार्थी तैयार हो सकेंगे । आपको यह बात पूर्ण रीतिसे ध्यानमें रखनी चाहिए कि अब हमें उन विद्यार्थियोंके उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है जो अपनी संसारयात्राका निर्विघ्न रीतिसे निर्वाह करते हुए स्वार्थत्यागी बनें और जाति तथा देशकी सेवाके लिए सदा तत्पर हों। केवल खाने और कमानेवाले विद्यार्थियोंकी इस जमानेमें आवश्यकता नहीं है ।

उक्त व्यवस्थाके अतिरिक्त कई ऐसे स्थान बच जाते हैं जहांके विद्यार्थी बाहर गांव जाना पसन्द न करें और न उन्हें वहां मातृभाषाके पढ़नेका सुभीता हो तो ऐसे स्थानोंपर वहांकी पञ्चायतीके

द्वारा पाठशाला खुलवानी चाहिए और उसमें दोनों प्रकारकी शिक्षाके देनेका प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

मैं जानता हूं कि अभी ऐसे कामके होनेमें विलम्ब जरूर लगेगा पर तब भी हमें अभीसे इस कामका सूत्रपात कर देना उचित है। मैं इस समय जातिमें एक विद्यालयकी बड़ी भारी जरूरत देखता हूं। खण्डेलवालोंकी बहुत संख्या होने पर भी उनके बाल बच्चोंको पढ़नेका कोई खास सुभीता नहीं है। क्या हम लोगोंके लिए यह हँसीकी बात नहीं है कि हम और और अनावश्यक कामोंमें तो लाखों रुपया खुले हाथों खर्च कर डालते हैं और जिस पर सारी जातिके जीवन मरणका प्रश्न निर्भर है उसके लिए कुछ नहीं? खेद हमारे इस अविचारपर! हमें अपने शिक्षाके संकीर्ण प्रदेशको अब विशाल बनाना चाहिए। अब बिना शिक्षाके संसारमें हमारी स्थिति कायम रहना असंभव है। सारा संसार शिक्षाप्रचारके लिए अविश्रान्त परिश्रम कर रहा है फिर हम भी क्यों न उसीका अनुकरण करें? क्यो न जातिको अज्ञानके पञ्जेसे छुड़ा कर उसे सुखी बनादें-उन्नतिके शिखरपर पहुंचा दें? हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

स्त्रीशिक्षा } शिक्षाके सम्बन्धमें एक बात ओर ध्यान देने लायक है। वह यह कि पुरुषशिक्षाके साथ साथ स्त्रीशिक्षाका भी प्रचार हमें करना चाहिए। इस बातको सब देशोंने मुक्तकण्ठसे स्वीकारकी है कि जिस देशमें और जिस जातिमें स्त्रीशिक्षाका प्रचार नहीं है वह देश वह जाति कभी उन्नति नहीं कर सकती। हमारे अभागे समाजमें जबसे अज्ञा-

नका राज्य बढ़ने लगा तबसे बहुतोंके ऐसे खयाल होगये हैं कि स्त्री-शिक्षासे फायदेकी जगह हानि होती है। पर ऐसे समझवालोंकी नितान्त गल्ती है। यह कभी नहीं हो सकता है कि शिक्षा हानिकी कारण हो। जिससे जीवनमें अमूल्यता और अपूर्व सौन्दर्यका विकाश होता है उसे हानिकी कारण बताना ना समझी है। हमें यह भी तो विचारना चाहिए कि हमारे समाजमें सीता, मनोरमा, द्रौपदी, सुलोचना, अञ्जनी आदि जो विदुषी महिलायें अवतार ले चुकी हैं और उन्होंने अपने कर्त्तव्यसे—अपने गुणोंसे—जो इतनी ख्याति प्राप्त की है, क्या वे पढ़ी लिखी नहीं थीं? भगवान् आदिनाथने तो अपनी पुत्रियोंको पढ़ानेके लिए स्वयं एक विशाल व्याकरण ग्रन्थकी रचना की थी। फिर ये सब बातें हमें क्या यह नहीं बतातीं कि स्त्रीको अवश्य पढ़ाना चाहिये? हमारे यहां चार संघोंमें आर्यिकायें भी शामिल हैं। क्या कोई यह कहनेका साहस कर सकता है कि वे पढ़ी लिखी नहीं होती थीं? हर्गिज नहीं। स्त्रियोंको पढ़ानेकी पद्धति नवीन नहीं किन्तु पुरानी है। उसे फिरसे जातिमें चलानी चाहिए। कुछ गन्दे खयालोंके पुरुषोंकी बरजोरीसे स्त्रीशिक्षाके सम्बन्धमें हमारी जाति बिलकुल ही मूर्ख बन गई है। उसमें नाम मात्रके लिए भी स्त्रीशिक्षाका प्रचार नहीं रहा। ऐसी हालतमें क्या समाजसुधारकी आशा की जा सकती है। हमें उचित है कि हम अपनी जातिसे इस कमीको दूरकर उसकी जगह स्त्रीशिक्षाका प्रचार करें। जगह जगह कन्यापाठशालायें खोलकर उनमें अपनी पुत्रियोंको पढ़ावें। हमें न केवल स्त्रियोंको धार्मिक शिक्षा ही देनी चाहिए किन्तु उसके साथ साथ गृहस्थ धर्मके निर्वाहकी जितनी शिक्षाएँ हैं उन सबसे

हम उन्हें अलंकृत करें। हमारी जातिमें आज जो विधवाएं बड़ी कठिनतासे जीवन बिताती हैं, यदि वे कुछ पढ़ी लिखी होतीं, उन्हें अपने निर्वाहकी कुछ शिक्षा दी गई होती तो क्यों वे अपने अमूल्य जीवनको इस तरह सड़ाती? क्यों आज उन्हें भीख मांगनी पड़ती? इन सब बातोंका कारण एक अशिक्षा है। उसीसे उनका जीवन बिगड़ रहा है। हमें यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि स्त्रीशिक्षाके बिना हमारा निस्तार नहीं है। हमें अभी नहीं तो दश पचीस वर्ष बाद जबरन इसका प्रचार करना ही पड़ेगा। फिर अभीसे इस पुण्यकर्मका श्रेय क्यों न हम प्राप्त करें?

उपदेशक विभाग शिक्षाका प्रचार हम करना चाहते हैं। पर वह हो कैसे? यदि हमारी जातिके लोग कुछ शिक्षित होते तो हमें विशेष प्रयत्न न करना पड़ता। उन्हींके द्वारा बहुत कुछ प्रचार हो सकता था। पर जातिमें शिक्षाका तो कालपड़ा हुआ है। ऐसी हालतमें एक ऐसे जरियेकी आवश्यक्ता है जिसके द्वारा हमारे भाइयोंको अपनी हालतका ज्ञान हो, उनकी रुचि विद्याप्रचारकी ओर अधिक बढ़े, ज्ञातके सुधारकी ओर उनका ध्यान आकर्षित हो, जातिका अधःपतन क्यों हुआ? कुरीतियां हमारी जातिकी जड़को बड़ी निर्दयतासे काट रहीं हैं, धार्मिक ज्ञानके बिना हमारे आचार विचार सब नष्ट प्रायः हो चुके हैं, इन सब बातोंका ज्ञान करानेके लिए मैं जहांतक समझता हूं उपदेशकोंका जरिया बहुत अच्छा है। उसके द्वारा जातिमें जितनी जल्दी जागृति हो सकेगी उतनी और तरह कठिनतासे होगी। जिस प्रान्तकी यह सभा है, उसमें तो इतना अज्ञान छाया हुआ है कि कुछ ठिकाना

नहीं। मैं जहांतक समझता हूं इस प्रान्तमें ऐसे लोग शायद ही निकलें जिन्हें कुछ धार्मिक ज्ञान हो। वे इतना भी नहीं जानते होंगे कि हमारा धर्म क्या है? खैर, धार्मिक ज्ञान होना तो कठिन है, पर उनसे यही कहिए कि तुम जब श्रावक हो तब यह तो बतलाओ कि श्रावकके आठ मूल गुण कौनसे हैं? इस साधारण प्रश्नका उत्तर देनेवाले भी संभवतः ही निकलेंगे। जिस प्रान्तकी ऐसी गिरी दशा है तब आप स्वयं विचार सकते हैं कि हमें उनके सुधारका उपाय कितना जल्दी करना चाहिए? इसके लिए सबसे उत्तम मार्ग उपदेशोंका जारी करना है। सभाको इसके लिए पूर्ण उद्योग करना चाहिए।

परस्परमें सहानुभूति होनी चाहिए — हमारी अवनतिके, शिक्षाके अतिरिक्त और भी बहुतसे कारण हैं। पर उनपर हमारा ध्यान बिल्कुल नहीं है। जिस धर्मके हम धारक है, उसमें एक ऐसी उत्तम शक्ति है जो जीवमात्रको अपना सकती है। उन्हें अपने उदरमें आश्रय दे सकती है। वह क्या? वही परस्परमें सहानुभूति वात्सल्य—प्रेम-का होना। सच पूछो तो जैन धर्मका मूलतत्त्व ही यही है कि 'सत्वेषु मैत्री' अर्थात् जीव मात्रपर प्रेम करो। कौन नहीं जानता कि सम्यक्त्वके आठ अङ्गोंमें वात्सल्य अंगकी भित्ति इसी प्रेमतत्त्वपर निर्भर है। पर खेद है कि हमारा हृदय इतना अनुदार—संकीर्ण—बन गया है कि हममें प्रेमकी—परस्परसहानुभूतिकी गंध भी नहीं रही। संसारके जब जीवोंसे प्रेम करना तो दूर किनारे रहा, पर हमें अपने जातिबन्धुओंसे भी प्रेम नहीं है। हम उन्हें दुखी देखते हैं, अनाथ देखते हैं, भीख मांगते देखते हैं, अन्नके दानेके लिए तरसते हुए देखते हैं, गलियों गलियोंमें ठोकरे खाते फिरते देखते

हैं, पर तब भी उनपर हमें दया नही आती। उनसे हम सहानुभूति नहीं रखते—उन्हें सहायता नहीं देते—उनके दुःखोंसे हमारा हृदय नही पसीजता। क्या यही अहिंसा धर्मका तत्त्व है? जैनधर्मके प्राप्त करनेका यही मतलब है? हममें इतनी भी मनुष्यता नहीं जो मनुष्योंके भी काम आ सकें? इतनी स्वार्थता अच्छी नहीं। आज जो हमारी जातिका दिनोंदिन ह्रास हो रहा है; जातियाँ मर मिटी जा रही हैं, उनका यही कारण है कि हममें प्रेम-परस्परकी सहानुभूति—नहीं है। जिस जातिकी उन्नतिके लिए निकलंक सरीखे महात्माओंने अपना आत्मसमर्पण किया था उसीकी सन्तान होकर हममें इतनी संकीर्णता, इतनी स्वार्थता जो अपने प्रेमियोंपर भी हम प्रेम नही करते? खेद! अब हमे अपनी हृदयकी मलिन वासना नष्ट करके परस्परमें प्रेम करना चाहिए। यदि अब भी हम प्रेमतत्त्वको न समझेंगे—जातिबन्धुओंसे प्रेम करना न सीखेंगे—तो समझिए हमें जल्दी ही संसारसे उठजाना पड़ेगा।

कुरीतियाँ जातिकी जड़को सड़ा रही हैं — जबसे हमारी जातिने शिक्षासे अपना मुख फेरा और अज्ञानका सहारा लिया तबसे उसपर कैसी कैसी अघटित घटनाएँ घटी हैं, किन किन आपत्तियोंसे उसे सामना करना पड़ा है, ये सब बातें छातीको दहला देतीं हैं। उसमें भी इन कुरीतियोंके घुनने तो इसकी जड़को तहस नहस कर डाला हैं—सड़ाकर बिल्कुल निस्सार—खोखला—बना डाला है। जाति दिनपर दिन अज्ञानके समुद्रमें बही जा रही है तब भी हमें इनके नष्ट करनेकी बुद्धि नहीं सूझती। ऐसे विचारों से क्यों न अधिक हमारा अधःपतन होगा? अवश्य

होगा। कन्याविक्रय, वृद्धविवाह, फ़िजूलखर्ची आदि कुरीतियां कितनी भयानक हैं, इसपर जब विचार करते हैं तब कहना पड़ता है कि एक ओर कितना ही उन्नतिका काम क्यों न किया जाता हो, उसकी जड़को ये कभी मजबूत न होने देंगी।

इसमें कन्याविक्रयने तो जातिपर वज्रकासा काम किया है। जातिमें आज अविवाहित पुरुषोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। यह कितनी शर्मकी बात है कि हम दावा तो अहिंसाधर्मके पालन करने वाले का करें और हमारा कर्म हो कसाईसे भी बढ़कर। छोटे छोटे जीवोंको तो बचावें—उनकी रक्षा करें—और अपनी प्यारी सन्तानके गलेपर निर्दयताके साथ छुरी फेरें? उन्हें दीन दुनियांसे खोनेका उपाय करें! मैं नहीं जानता कि जिस धर्मका जीव मात्रपर दया करनेका उपदेश है उसके धारकोंमें इतनी निर्दयता क्यों है? रहा उनका औरोंपर दया करना, वे अपनी प्यारी लड़कियों पर ही तो दया करें? क्यों वे अपने इस पापकर्मसे धर्मको लाञ्छित करते हैं वे अपनी खोटी वासनाओंके लिए क्यों सारी जातिको धूलमें मिलाना चाहते हैं?

भाइयो! कुछ तो अपने हृदयमें इन कुरीतियोंकी बाबत विचार करो। आखिर हैं तो हम मनुष्य ही। कुछ तो हममें मनुष्यता रहनी चाहिए। हमें अपने मनमुटावके लिए इतनी निर्दयता करना उचित नहीं। यद्यपि मैं यह जानता हूं कि ये कुरीतियां स्वार्थियोंके मारे जल्दी नष्ट न होंगी तब भी हमें इनके लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा। मैं उचित समझता हूं कि यह कार्य जितना स्थानिक पञ्चायतियोंके द्वारा जल्दी सफलता प्राप्त कर सकेगा उतना और उपायोंसे नहीं।

इसलिए जिन जिन शहरों वा गावोंके पञ्च यहां उपस्थित हैं उन्हें इसी जगह यह संकल्प कर लेना चाहिए कि हम अपने अपने गावोंमें इन कुरीतियोंको रोकनेके लिए पञ्चायतियोंसे नियम कर देंगे। इसके अतिरिक्त और जगहके लिए सभाको खास प्रयत्न करना चाहिए। बिना खास प्रयत्न किये सभा ऐसे विषयोंके कितने ही प्रस्ताव पास करे उसे कुछ भी सफलता प्राप्त न होगी।

इसके सिवा विवाह शादीमें साधारण लोगोंका कम खर्चमें भी काम निकल सके ऐसा उपाय करना चाहिए। अभी बहुत तो इस लिए भी अविवाहित रह जाते हैं कि उनके पास अपनी नामवरीके लिए अधिक खर्च करनेको रुपया नहीं होता है। ऐसे वक्तपर स्थानिक पञ्चायतियोंका कर्त्तव्य है कि वे अपने रीति रवाज बिल्कुल ढीले कर दें। जहां सौ रुपया खर्च करनेकी आवश्यक्ता हो वहां पचास, पचीस अथवा जैसी खर्च करनेवालेकी शक्ति हो, जिससे उसे आगे दुःख न उठाना पड़े, खर्च कराकर उसका काम निकलवा दें। इन्हीं सब उपायोंके उपयोगमें लानेसे जातिकी दशाका सुधार हो सकेगा। वैसे हम कितनेही बकें—चिल्लायँ उससे कुछ लाभ नहीं होगा। मैं आशा करता हूं कि इस जरूरी कामपर हमारी पञ्चायतियां अवश्य ध्यान देंगी।

हमारी आर्थिक अवस्था } पहले तो वैसे ही हमारी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है और सौमें पांचके पास कुछ पैसा हुआ भी तो उससे जाति धनिक नहीं कहला सकती। इसपर भी फिजूल खर्चियां जातिमें सीमासे अधिक बढ़ी हुई हैं और दिनपर दिन बढ़ती ही जाती हैं। दरिद्रताके मारे हमारे जातिभाई

दुःखजालमें गहरे गहरे फँसते चले जा रहे हैं तब भी वे नामवरीके लिए—झूंठी वाहवाहीके लिए अनावश्यक, असमयोपयोगी कार्योंमें खुले हाथों पैसा लुटाते हैं। उनसे कभी यह कहा जाय कि तुम किसी उपकारके काममें कुछ खर्च करो तो सुनते ही उनके प्राण सूख जाते हैं। और जहां झूंठी प्रशंसाकी जगह होती है वहां उनसे चाहे जितना खर्च करा लीजिए वे कभी इंकार न करेंगे। जिस जातिमें ऐसी अविचारितरम्यता है उससे कहांतक भलाईकी आशा की जा सकती है? इसीको मरेको मारना कहते हैं। पहले ही तो हम दरिद्र, उसपर यह फिजूल खर्च, तब क्यों न हम दरिद्री बनेंगे? अवश्य बनेंगे! इसके अतिरिक्त न हमारे पास कोई ऐसी आमदनीकी सूरत है जिससे हम खूब धन कमाते हों। यदि कुछ उपाय है तो वह यह कि या तो सट्टा करना, या साधारण दूकानदारीसे किसी तरह पेट भरने लायक कमा लेना, या पडे पडे व्याज खाना। पर हमारी यह इच्छा कभी नहीं होती कि हम विदेशियोंकी तरह बड़े बड़े व्यापार करके, मिल, बैंक, कम्पनियां, हर प्रकारके कारखाने खोलकर उनके द्वारा खूब धन कमाकर देश या जातिका उपकार करें। हालां कि हम वैश्य हैं हर एक प्रकारके ऊंचे ऊंचे दरजेके व्यापार कर सकते हैं तब भी हमें मुर्देकी तरह पड़ा रहना ही अच्छा जान पड़ता है। हमारे पूर्वज विदेशोंमें जाकर करोड़ों, अरबोंका धन कमाते थे पर हमसे अपनी जन्मभूमि ही छोड़ी नहीं जाती है। हमें याद रखना चाहिए कि

स्वापतेयमनायं चेत्सव्ययं व्येति भूर्यपि।
सर्वदा भुज्यमानो हि पर्वतोपि परिक्षयी॥

अर्थात् आमदनी तो हो नहीं और खर्च बराबर होता रहे, उसः

दशामें हमारे पास कितना ही धन क्यों न हो, धीरे धीरे वह सब नष्ट हो जायगा, आप बड़े भारी पर्वतको भी थोड़ा थोड़ा रोज खोदते जाइए, एक दिन वह आयगा कि उसका नाम निशान तक मिट जायगा। ठीक ऐसी ही हमारी जातिकी दशा है। खर्च तो उसमें अनापसनाप प्रतिदिन हो रहा है पर आमदनी कितनी है यह जातिकी बढ़ती हुई दरिद्रतासे स्पष्ट जान पड़ता है। इसलिए हमें उचित है कि हम हर एक तरहके व्यापारमें अपनेको आगे बढ़ावे। यह खूब ध्यानमें रखिए कि उसी जातिका सुधार जल्दी होगा जिसकी आर्थिक अवस्था अच्छी होगी। हमें अपने पूर्व पुरुषोंके इस मूल मंत्रको आराध्य बनाना चाहिए कि 'व्यापारे वसते लक्ष्मी' तब ही हम संसारकी जातियोंमे गिनने लायक हो सकेंगे।

पञ्चायतियोंका सुधार } आपको यह अच्छी तरह ज्ञात होगा कि हमारी खण्डेलवालमहासभाकी स्थापना किस उद्देश्यको लेकर की गई थी। जातिकी कुरीतियोंका मिटाना, उसमें विद्याका प्रचार करना आदि विषय तो उसके कर्तव्य निश्चित किये ही गये थे। पर इसके अतिरिक्त एक और महत्त्वके विषयको सभाने अपने हाथमें उठाया था। समयको देखते हुए उसकी जरूरत तो बहुत कुछ है पर अभी सभाने उसके लिए कोई खास प्रयत्न नहीं किया है। वह कौनसा विषय? यही कि हमारी पञ्चायतियोंकी इस समय हालत बहुत सोचनीय हो रही है, उसका सुधार करना। जहां देखो वहीं कुछ न कुछ झगड़ा, ईर्षा, द्वेष, आदि ही दीख पड़ते हैं। उनका फल यह होता है कि जो काम पंचायतियोंके करने लायक होते हैं उन्हें भी फिर ठीक रीतिसे नहीं

करतीं। कहीं पक्षपात, कहीं आग्रह, कहीं अपनी मानप्रतिष्ठा आदिके वश होकर वे कर्तव्यको अकर्तव्यमें परिणत कर देतीं हैं। इसीका यह नतीजा है कि आज प्रायः लोगोंकी पञ्चायतियोंपरसे श्रद्धा उठ गई है और वे उसे लड़कोंका खेल समझने लगे हैं। हम यह नहीं कहते कि ऐसी समझवालोंकी गल्ती न होगी पर इसमे भी सन्देह नहीं कि पञ्चायतियोंकी उनसे कहीं अधिक गल्तियां होतीं हैं। आज कलके पञ्चायतियां करनेवाले पञ्चोंकी हालत, उनकी बोलचाल, उनका अभिमान, उनका अनुभव आदि आप देखेंगे तो आपको हँसी आये विना न रहेगी। था तो यह बड़े अनुभवी पुरुषोंका काम, पर आज कल तो पञ्चायती करना लीलासी हो गई है। जो चाहे वे ही पञ्च-बन बेठते हैं। इस कामका कितना महत्त्व है? इसके करनेवालोंपर कितनी जबाबदारी होती है। चाहे इन बातोंका उन्हें कुछ ज्ञान न हो पर पञ्चायती करनेको तो वे पद्मासन लगाकर मन्दिरमें जरूर ही डट जायँगे। मुझे जहांतक ज्ञात है मैं कहूंगा कि छोटेसे छोटे और साधारण जातीय मामले भी जो आज अदालतमें न्याय पानेकी इच्छासे जाते हैं उसका खास कारण पञ्चायतियोंकी दुर्दशा हो जाना है। आज पञ्चायतियोंमें कुछ हिम्मत होती, उनमें पक्षपात, दुराग्रह न होता, उनका लोगोंपर कुछ महत्त्व पड़ता तो क्या कभी यह संभव था कि हमारे जातीय मामले अदालतोंमें जाते? हर्गिज नहीं। पर गल्ती जब अपनी तब दोष किसे दिया जाय? जो हो, अब भी यदि हम पञ्चायतियोंकी हालत सुधारना चाहें तो सुधर सकती है। पर पहले हमें आदर्श बनना चाहिए। मैं

समझता हूं कि यह कार्य कठिन जरूर है, पर असाध्य नहीं है। होगा, पर देरसे। तो भी हमें प्रयत्न तो अभीसे करना चाहिये। और जो जो पञ्चायतियोंको सुधार होनेके उपाय हैं उन्हें काममें लाना चाहिए। मेरी समझके अनुसार सब देशके खण्डेलवालोंमेंसे अच्छे २ विद्वानों और अनुभवी पुरुषोंको चुनकर उनकी एक बड़ी समिति संगठित करनी चाहिए और उसीके द्वारा इस कार्यको चला-ना चाहिए। ऐसा न करनेसे सफलता प्राप्त होना कठिन जान पड़ता है। आशा है आप लोग इस विषय पर खूब मनन करेंगे। क्योंकि जातिकी उन्नतिका सब कार्य पञ्चायतियोंपर ही निर्भर होता है।

सज्जनो! मुझे जो कुछ वक्तव्य था, उसे मैं निवेदन कर चुका। मै जहांतक समझता हूं इस समय जातिके लिए जो जो आवश्यक बातें हैं उनका प्रायः जिकर आगया है। इसके अतिरिक्त कुछ फुट-कर दो तीन बातें और कहकर अपने व्याख्यानको समाप्त करूंगा। मैं कुछ देरके लिए और आपको तकलीफ दूंगा।

हम काम तो बहुत उठाना चाहते हैं। हमारी इच्छा जातीयविद्या-लय, उपदेशकविभाग, शिक्षाप्रचारकफण्ड आदिके जारी करनेकी है। इधर सत्यवादीका काम चलता है। कहनेका मतलब यह है कि खर्चके मार्ग तो बहुत हैं और बहुतसे और नवीन उठाये जा सकते हैं। पर वे चलेंगे कैसे? कहांसे उनके खर्चके लिए रुपया आयगा? हालां कि ऐसे कामोंके लिए चन्दा किया जा सकता है पर नियमित चलनेवाले काम चन्देसे चलना मुश्किल है। इसलिए चन्देके द्वारा जो कुछ आमदनी होगी वह तो ठीक ही है पर इसके अतिरिक्त भी हमें कोई आमदनीकी सूरत निकालनी चाहिए। इसके लिए मैं बहुत उचित

समझता हूं कि जो हमारे विवाह आदि कार्योंमें बहुत खर्च होता है उसके साथ साथ ऐसे कामोंके लिए भी कुछ लाग लगाया जाय। अच्छा हो यदि इसी तरह कुछ पैदावारीपर भी लगाया जाय। विना ऐसी स्थायी आमदनीके ऐसे कार्य बहुत कठिनतासे चलेंगे।

दूसरे—एक शिक्षाप्रचारकफण्ड स्थापित करना चाहिए। इसकी इस समय बहुत ही जरूरत है। इसके द्वारा जातिके असमर्थ किन्तु पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको अथवा किसी और तीक्ष्ण बुद्धिवाले जैन विद्यार्थीको छात्रवृति देकर किसी विद्यालय, पाठशाला, स्कूल वा कालेजमें उसके पढ़नेका प्रबन्ध कर दिया जाय। जैन समाजमें ऐसे बहुत असमर्थ विद्यार्थी हैं जो पढ़नेकी इच्छा रखते हुए भी धनाभावके कारण नहीं पढ़ पाते हैं।

तीसरे—हमारी सभाकी औरसे सत्यवादी प्रकाशित होने लगा है। उससे जातिके बहुत कुछ हित होनेकी संभावना है। इसलिए उसका प्रचार अधिकतासे किया जाना चाहिए। मुझे मालूम हुआ है कि उसकी २५० प्रतियां इस प्रान्तके खण्डेलवालभाइयोंके पास मुफ्त भेजी जाती हैं। पर यह प्रान्त बहुत ही अशिक्षित है इसलिए कमसे कम ५०० प्रतियोंके मुफ्त भेजनेका प्रबन्ध होना चाहिए। उसकी आर्थिक अवस्था हमें अच्छी कर देनी चाहिए।

अन्तमें एक बात और कहूंगा जो हम लोगोंके लिए बड़े महत्त्वकी है। वह यह कि—हममें जातीय कामके करनेकी उपकार बुद्धि क्यों उत्पन्न नहीं होती? क्यों हमारे हृदय सदा कुवासनओंके स्थान बने रहते हैं? क्यों उनमें पवित्रता नहीं आती? इसका

कारण है। आप यह अच्छी तरह समझते हैं कि अच्छी बातें उसी पुरुषके हृदयमें वास करती हैं जिसका मन पवित्र होता है। अपवित्र मनवालेमें उत्तम विचार उत्पन्न नहीं होते हैं और न ऐसी हालतमें उससे कोई पवित्र काम ही होने पाता हैं। कहनेका अभिप्राय यह है कि हमारे हृदय अपवित्र हैं। इसीलिए उनमें उत्तम विचार पैदा नहीं होने पाते।

इसे सब स्वीकार करेंगे कि जिस वस्तुका संस्कार होता है वह शुद्ध हो जाती है—उसकी अपवित्रता नष्ट हो जाती है। जैसे सोनेका जितना जितना संस्कार होता है—जितना जितना वह अग्निमें तपाया जाता है वह उतना उतना ही शुद्ध होता जाता है—उसमें स्वाभाविक तेज आता जाता है। इसी प्रकार संसारकी छोटीसे छोटी वस्तुको आप ध्यानसे देखेंगे तो आपको जान पड़ेगा कि वे संस्कारसे खाली नहीं है। उनका किसी न किसी रूपमें अवश्य संस्कार हो चुका हैं। हम जो प्रतिदिन स्नान और दन्तधावन आदि क्रियाएं करते है, ये सब क्या हैं? संस्कार। तब यह कह देना अनुचित न होगा कि जैसे और और वस्तुओंमें संस्कारकी जरूरत है वैसेही हममें भी उनकी जरूरत है। केवल यह देखकर कि संसारकी सब वस्तुएँ संस्कारित होती हैं तब हमें भी वैसा होना चाहिए, जरूरत नहीं है। जब आप अपने ऋषियोंके सिद्धान्तोंपर—उनके शास्त्रोंपर विचार करेंगे तब आपको इन संस्कारोंकी आवश्यक्ता जान पड़ेगी कि उन्होंने इस विषयपर कितना जोर दिया है। उन्होंने साफ लिख दिया है कि जबतक तुम अपनेको, अपनी सन्तानको

संस्कारित न बनाओगे तबतक तुम अपनेको तेजस्वी पवित्र विचार वाला नहीं बना सकते। इससे सिद्ध होता है कि हमारे लिए संस्कार बहुत आवश्यक कर्तव्य है। पर जब हम अपनी जातिमें इस विषयका कितना प्रचार है, इसपर विचार करते हैं तो एक साथ हताश हो जाना पड़ता है। उसमें तो कहीं नाम मात्रके लिए भी संस्कार होते नहीं दीख पड़ते। तब कैसे हम यह आशा करें कि हमारी जातिमें वीर पुत्र पैदा हों और वे जातिका उद्धार करें? हमें याद रखना चाहिए कि यदि हम अपनी जातिमें अच्छे अच्छे विद्वान् उत्पन्न करना चाहते हैं तो हमें पुनः गर्भधानादि संस्कारोंका शास्त्रोंके अनुसार प्रचार करना उचित है।

बहुतोंका कहना है कि हम इतने बड़े होगये। हमारे अब क्या संस्कार होंगे? पर यह समझ ठीक नहीं। यह बात दूसरी है कि हमारे सब संस्कार न हो सकते हों। पर हां कितने संस्कार हो भी सकते हैं। जैसे यज्ञोपवीत आदि। जो जो संस्कार हमारे योग्य हैं उन्हें स्वयं करना चाहिए और जातिमें तो इनका प्रचार करना ही चाहिए। जिससे हमारी भविष्य सन्तान आदर्श बन सकें। मुझे विश्वास है कि आप इस विषयपर अपने ध्यानको आकर्षित करेंगे। और संस्कार द्वारा पवित्रित होकर मनको पवित्र बनायँगे। समझो, पवित्र मन ही हमें जातिकी सेवा करना सिखायगा। हममें नितनये उत्तम उत्तम विचार उत्पन्न करेगा। इसलिए सभासे हमारा अनुरोध है कि वह इस कामको अपने हाथमें लेकर इसका प्रचार करे।

बस, इतना कहकर आप लोगोंसे बैठनेके लिए आज्ञा लेता हूं और साथ ही प्रार्थना करता हूं कि

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

इस उक्तिके अनुसार मुझसे कहीं त्रुटि होगई हो तो उसके लिए क्षमा प्रदान करेंगे ।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्याः जिनेश्वराः ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

सत्यवादी ।

संकीर्णता हटाओ, दिलको बड़ा बनाओ ।
निज कार्यक्षेत्रकी अब, सीमाको कुछ बढ़ाओ ॥
सबहीको अपना समझो, सबको सुखी बनादो ।
औरोंके हेतु अपने, प्रिय प्राण भी लगादो ॥

प्रथम भाग. } जेष्ठ श्रीवीर नि. २४३९ { अंक १०

समाज-सेवा ।

इस परिवर्तनशील संसारमें अतुल समृद्धिशाली बहुतसे राजे महाराजे ऐसे भी होगये हैं जिनका नाम तक कोई नहीं लेता, जिनके गुणोंका यशोगान करनेमें अपनेको कोई भाग्यशाली नहीं समझता, जिनका जीवन किसीके अनुकरण योग्य नहीं हुआ, जिनके द्वारा मानव समाजको कभी कुछ लाभ नहीं पँहुचा, जिनका सम्मान सूचक कोई स्मारक स्थापित नहीं दिखाई पडता और न किसीने उन्हें कभी गौरवकी दृष्टिसे ही देखा। वे जैसे संसारमें उत्पन्न हुए वैसे ही चल बसे। अपने आत्याचारों और दुराचारों द्वारा प्रजा-पीडन करना ही जिनके जीवनका लक्ष्य रहा है, भला वे कैसे मानव समाजके हृदयमें स्थान

पा सकते हैं। मानव समाज तो उसे अपने पवित्र हृदयमें विराजमान करेगा, उसे आदरकी दृष्टिसे देखेगा, वह उसे आराध्य बनानेका दावा कर सकेगा जो उसके सुखमें सुखी और दुःखमें दुखी बनेगा, उसके छोटेसे छोटे या बडेसे बडे काममें अपने जीवनका भाग दे सकेगा--उसकी सेवा कर सकेगा।

जिसने मानवसमाजकी कुछ सेवा न की, संसारमें बिलखते हुए जीवोंको कभी शान्ति प्रदान करनेका कुछ यत्न न किया, भूखके मारे तडफडाते जीवोंको देखकर जिसने एक मुट्ठीभर अन्नके देनेकी उदारता न दिखलाई, तृषासे सूखते हुए बेचारोंके कण्ठोंको जिसने चुल्लुभर जलसे शीतल न किया, ठण्डके मारे अकडते हुए दीन गरीबोंको जिसने कभी एक टूटा फटा वस्त्रका टुकडा भी प्रदान न किया और जिसने अपने जीवनको पवित्र, प्रेममय, भक्तिमय, दयामय और सहानुभूतिपूर्ण न बनाया, भला आप ही कहें ऐसे संसारके भारका मानव समाज कैसे गौरव कर सकता है? कैसे उसका गन्दा जीवन आदर्श जीवन समझा जा सकता है? किस मुहको लेकर उसका स्मारक स्थापित किया जा सकता है? कभी नहीं। हां इसके विपरीत जिन महापुरुषोंने, जिन दयालुओंने, जिन मानव-समाजके सच्चे सेवकोंने, जिन प्रेमियोंने, जिन भक्तोंने, जिन निष्काम सेवियोंने और जिन वसुधैव कुटुम्बकं सिद्धान्तके माननेवालोंने सच्चे प्रेमसे मानवजातिकी सेवा की थी, उसके लिए अपने जीवनकी बलि दी थी और दुखियोंका दुःख दूर करना अपना कर्तव्य समझा था, जो दूसरोंकी सेवा करनेमें अपनेको तक भूल गये थे, जिन्होंने दिन रात दुखियोंको सुखी बनानेकी

चिन्ता की थी, उनकी सेवाके लिए सारे सांसारिक ऐश्वर्य, सुखोप-
भोगको जलांजलि दे डाली थी, जिन्होंने न केवल मानव समाजको,
किन्तु पशु, पक्षियोंको तक सुखी करनेका हार्दिक प्रयत्न किया था,
ज्ञान प्रचारके लिए—संसारको सच्चा मार्ग सुझानेके लिए—अन्धकारमें
ठोकरें खाते फिरते मनुष्योंके लिए—ज्ञान दीपक प्रगट किया था,
जो हजारों, लाखों दीन दुखियोंके गर्म गर्म आंसुओंको पोंछ कर
उन्हें सांत्वना प्रदान करते—उन्हें विश्वास—धैर्य—दिलाते, उनकी
आवश्यकताओंको पूर्ण करते, उन्हें अन्नदान, वस्त्रदान, औषध दान और
जीवनका उद्धार करनेवाला ज्ञान—दान देते, जिन्होंने अनेक रोगि-
योंके मल मूत्रके धोनेमें कभी आगा पीछा न सोचा था, न कभी
वे ऐसे पुरुषोंको देखकर ललाटपर तीन सल चढा लेते थे, थोडेमें यों
कह लीजिए कि जिन्होंने समाज सेवाके लिए अपना तन, मन और
धन बडी उदारता और निस्पृहवृत्तिसे समर्पण कर दिया था और अपने
जीवनको जिन्होंने आदर्श और अनुकरणीय कर दिखाया था, ऐसे
ही पुरुषरत्नोंको संसार अपना भूषण समझकर आदर सन्मानकी
दृष्टिसे—पूज्यभावसे—देखता है। उनका नाम स्मरण करनेमें, उनके
पवित्र गुणोंका गान करनेमें, उनकी भक्ति करनेमें और उनके
सन्मानार्थ—उनकी कीर्ति अचल करनेके लिए—उनकी प्रतिमूर्ति—
स्मारक—स्थापित करनेमें बडी उत्सुकता दिखाता है। उनका नाम
लेनेसे नव युवकोंके—कर्तव्य परायणोंके—हृदयमें एक अपूर्व शक्तिका
संचार होता है, भक्तोंके हृदयमें भक्तिका स्रोत बहने लगता है,
पापियोंके हृदयमें प्रेमप्रवाह छूटने लगता है और दयालुओंके मनमें
दयाका समुद्र उमड आता है। सारांश यह कि उनके पवित्र

कार्यका प्रभाव न केवल उसी समयपर पडता है वल्कि सब समयमें एकसा वर्तमान रहता है। जो मनुष्य कुछ भी अच्छा काम करता है वह न केवल अपनेको ही लाभ पहुँचाता है, परन्तु सारे संसारको उसका भागी वनाता है। क्योंकि उसके देखा देखी दूसरे लोग भी उसका अनुकरण कर उसी क्षेत्रमें प्रविष्ट होनेका प्रयत्न करते हैं।

संसारमें कोई अमर नहीं हो सकता, कोई ऐसा वलवान नहीं जो मृत्युके मुखमें पडनेसे अपनी रक्षाकर सके, कौन ऐसा है जिसे एक न एक दिन सब सांसारिक ऐश्वर्य न छोड जाना पडेगा और कौन ऐसा है जो संसारमें सदा शाश्वता बना रहेगा? पर जीवन उसी मनुष्यका सफल है जो अपने पीछे अपना पवित्र नाम छोड कर अपनी भावी सन्तानको भी वैसा ही कार्य करनेका मार्ग वता जायगा, उसे निस्वार्थ, उदार, निष्कामसेवी और दूसरोंके लिए आत्मभोग देने वाला वना जायगा।

मानव समाजकी सेवा करना सब कामोंमें उत्तम है, यही सच्चा योग है, सच्चा वैराग्य है। इसीकी महिमा वडे वडे ऋषियों और महात्माओंने गाई है। न केवल गाई है, किन्तु जीवमात्रकी सेवाकी है। ऐसे ही कर्मवीरोंको, ऐसे ही हितैषियोंको हम झुककर अभि-वादन करते हैं। उन्हें हृदयमें विराजमान करके उस दयालु परमा-त्मासे प्रार्थना करते हैं कि हमें भी वह ऐसी शक्ति प्रदान करे।

मित्रो! यदि तुम भी अपना जीवन सफल करना चाहते हो? सच्चे मनुष्य, सच्चे महात्मा वनना चाहते हो तो संसार क्षेत्रमें मानव समाजकी सेवा करनेके लिए प्रवेश करो, दुःख दूर कर उसे सुखी वनाओ। जिन लोगोंका कोई सहायक नहीं है जो असहाय हैं—भूखके मारे

जिनके प्राण पखेरू उड़नेकी तैयारी कर रहे हैं, जो अशिक्षित होनेसे दुःखी हैं, जो दरिद्र हैं, जो रोगी हैं, उनके जीवनमें योग दो, उनकी तकलीफें दूर करो। देशके निर्धन विद्यार्थियोंको पढ़नेके लिए उत्साहित करके उन्हें सब तरहकी सहायता पहुंचाओ, जिससे वे पढ़ लिखकर अपने भाइयोंके, अपनी जन्मभूमिके सच्चे सेवक बनकर उनका आपद्दशासे उद्धार करें। परस्परकी शत्रुताको जलांजलि देकर एकका एक सहायक बनो, दूसरोंकी विपत्तिको अपनी समझो। धनका अभिमान करके कभी अपने भाइयोंको कष्ट न पहुँचाओ। यही जीवनका सार है—कल्याणका पवित्र मार्ग है। इसे अपनाओ! अवश्य अपनाओ!! यह प्रार्थना है।

सेवक—सुखसम्पत्तिराय जैन.

शरीर-रक्षा।

हमारे जीवनकी अपेक्षा हमें और कुछ अधिक प्रयोजनीय नहीं है। इसलिए जीवनके निमित्त शरीररक्षा करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। यदि शरीर निरोगी नहीं है तो हम धन, जनका रंच मात्र भी सुख नहीं भोग सकते। जीवनको सुखसे व्यतीत करनेके लिये धन, जनकी आवश्यकता है। जीवनके पूर्ण होते धन, जन कहीं भी जायँ, इससे प्रयोजन नहीं रहता। अतएव शरीररक्षा किस तरहसे होती है उस शिक्षाको पहले देनेकी आवश्यकता है।

जीवन क्या है ? शरीर क्या है ? शरीरकी किस तरहसे वृद्धि होती है ? कौनसी प्रणालीसे वह निरोग रहता है? पीडा क्यों होती है? और कार्य करनेवाला सचेतन देह मृत्यु दशाको प्राप्त होकर जड सरीखा क्यों हो जाता है? इन सब विषयोंका उत्तर सबके लिए जानना अत्यन्त आवश्यक है । इनके न जाननेसे शरीर और मन अ-स्वस्थ रहता है । अतएव ज्ञान, धर्म, क्षमता—लाभ और संसार सुख भोगनेके लिये सबसे प्रथम शरीर और मनको स्वस्थ रखनेकी चेष्टा करनी चाहिए । अन्यान्य कार्य इसके पीछे हैं ।

अत्याचारके दोषसे शरीर और मन अस्वस्थ होता है और उनमें पीडा उत्पन्न होती है । अतएव शरीरसे संबन्ध रखनेवाले कौन कौनसे अत्याचार हैं ? उनको भली भांति जानना चाहिए । उनके न जाननेसे अधिक पीडा होनेकी सम्भावना रहती है और पीडा होनेसे बडा दुःख होता है । उससे आहार, विहार, शिक्षा, दीक्षा, चिन्ता, चर्चा और कार्यसाधन प्रवृत्तिमें कुछ सुख व सुविधाका बोध नहीं होता । पीडा दूर करके लिए हम बहुतसी चिकित्सा करते हैं, परन्तु आराम नहीं होता । बहुत बार कष्टसे हमें छट फटाना पडता है, दुःखके दिनोंका शीघ्र अंत नहीं होता और यह बराबर चाहते रहते हैं कि कैसे इस कष्टसे छुटकारा मिले? इन सब बातोंका जानना आवश्यक है । अभिप्राय यह है कि जान-कर, सुनकर और पढ़कर यत्न किया जाय तो शरीर-सुख और दीर्घ-जीवन प्राप्त हो सकता है । जिन नियमोंके पालन करनेसे शरीर स्वस्थ और दीर्घजीवी होता है वे कुछ संक्षिप्तसे यहां लिखे जाते हैं ।

दिन निकलनेके पहले शय्यासे उठकर ठण्डे जलसे नेत्र और

मुख धोना चाहिए। बाद मल—मूत्रकी बाधा मिटाकर दंतधावन और मुख प्रक्षालन करना चाहिए। इसके पश्चात् जल्दी चलकर या दौड़कर परिश्रम द्वारा शरीर संचालन करना अच्छा है। ऐसा करनेसे शांति मालूम होगी। फिर कुछ समय विश्रामकर स्नान करना चाहिए। स्नान करते समय पहले मस्तक भिगोकर शरीरको रगड रगड कर धोये। बाद जलमें डुबकी लगाना या तैरना चाहिये। तैरना जानना अच्छा है, उससे जलमें डूबनेकी आशंका नहीं रहती। जलमें अधिक समयतक रहना ठीक नहीं। अंगुलीका चमड़ा फूलते ही जलसे बाहर निकल कर समस्त शरीर टुआलसे या सूखे हुए गामक्षेसे घिसकर पोंछ डालना चाहिए। इन कामोंके करनेमें करीब १॥ घंटा समय लग जायगा। इसके बाद नित्य नियम लिखना, पढ़ना आदि जो कुछ अन्य कार्य हों उन्हें करे।

१० या ११ बजेके लग भग भोजन करना चाहिए। भूखसे अधिक आहार करना अच्छा नहीं। कारण—अति भोजनसे आलस्य आताहै, पेटमें कष्ट होताहै, पाचन क्रिया अच्छी तरहसे नहीं होती है और अक्सर पेट बढ़कर उदरामय नामक रोग हो जाता है।

कितना भोजन करनेसे शरीर हल्का और निरोग रह सकता है, इसका विचार स्वयं कर लेना उचित है। क्योंकि भूखसे ज्यादा खालेनेसे अजीर्ण हो जाता है, समयानुसार भूख नहीं लगती है, पेट भारी मालूम होता है, पेटमें गडगडाहट होने लगती है और कीचडके समान पतला दस्त होने लगता है। एसे समयमें उन्हें एक बार भोजन करना चाहिए। पीछे भूख लगेनपर साबूदाना, मांड, चावल आदि हल्के पदार्थ खाना चाहिए। जो खाऊ मनुष्य सारे दिन खाऊ

हम उन्हें अलंकृत करें। हमारी जातिमें आज जो विधवाएं बड़ी कठिनतासे जीवन बिताती हैं, यदि वे कुछ पढ़ी लिखी होतीं, उन्हें अपने निर्वाहकी कुछ शिक्षा दी गई होती तो क्यों वे अपने अमूल्य जीवनको इस तरह सड़ाती? क्यों आज उन्हें भीख मांगनी पड़ती? इन सब बातोंका कारण एक अशिक्षा है। उसीसे उनका जीवन बिगड़ रहा है। हमें यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि स्त्रीशिक्षाके बिना हमारा निस्तार नहीं है। हमें अभी नहीं तो दश पचीस वर्ष बाद जबरन इसका प्रचार करना ही पड़ेगा। फिर अभीसे इस पुण्यकर्मका श्रेय क्यों न हम प्राप्त करें?

उपदेशक विभाग } शिक्षाका प्रचार हम करना चाहते हैं। पर वह हो कैसे? यदि हमारी जातिके लोग कुछ शिक्षित होते तो हमें विशेष प्रयत्न न करना पड़ता। उन्हींके द्वारा बहुत कुछ प्रचार हो सकता था। पर जातिमें शिक्षाका तो कालपड़ा हुआ है। ऐसी हालतमें एक ऐसे जरियेकी आवश्यक्ता है जिसके द्वारा हमारे भाइयोंको अपनी हालतका ज्ञान हो, उनकी रुचि विद्याप्रचारकी ओर अधिक बढ़े, जातके सुधारकी ओर उनका ध्यान आकर्षित हो, जातिका अधःपतन क्यों हुआ? कुरीतियां हमारी जातिकी जड़को बड़ी निर्दयतासे काट रहीं हैं, धार्मिक ज्ञानके बिना हमारे आचार विचार सब नष्ट प्रायः हो चुके हैं, इन सब बातोंका ज्ञान करानेके लिए मैं जहांतक समझता हूं उपदेशकोंका जरिया बहुत अच्छा है। उसके द्वारा जातिमें जितनी जल्दी जागृति हो सकेगी उतनी और तरह कठिनतासे होगी। जिस प्रान्तकी यह सभा है, उसमें तो इतना अज्ञान छाया हुआ है कि कुछ ठिकाना

गर्म तथा ज्यादा ठंडा भोजन नहीं करना चाहिए। कारण यह भी शरीरको कृप कर देता है। इसलिए किञ्चित् उष्ण तथा ताजा भोजन करना श्रेयस्कर है।

हर समय पौष्टिक चीज खानेपर अधिक लक्ष्य रखना चाहिए। खानेकी चीजोंमें, फलोंमें—केला बहुत फायदे मंद है और सुलभतासे प्राप्त हो सकता है। ऐसे सेव, अनार, आदि और भी बहुतसे फल हैं। इन फलोंको कच्चे कदापि नहीं खाना चाहिए।

रसोई दोनों वक्त ताजी हो और दोनों समय बदल बदल कर भोजन करना अच्छा है। अर्थात् एक वक्त भात हो तो दूसरे वक्त रोटी। दाल और भातके साथ घृत खाना आवश्यक है, घीके न खानेसे शरीर अच्छा नहीं रह सकता। एक बात और याद रखनेकी है कि भोजन करके परिश्रम न करनेसे नुकशान होता है, इसलिए परिश्रम करना सबके लिए आवश्यक है। दुर्बल तथा उदरामय रोगसे गृसित् व्यक्ति इस तरहका भोजन कदापि हजम नहीं कर सकते। इसलिए ऐसे व्यक्तिको भात, साबूदाना आदि हलके पदार्थ इच्छासे कम खाने चाहिएं। उपर्युक्त बतलाई हुई रीतिके अनुसार न चलनेसे शरीर दुर्बल तथा कृप हो जाता है। भोजन करना जीवनके लिये तैल स्वरूप है। दीपकमें तेल न डालनेसे वह बुझ जाता है। वैसे ही भोजन न करनेसे मनुष्य थोडे ही दिनोंमें मर जाता है। अतएव सर्वदा पुष्टकारी द्रव्य खाना चाहिए। आहार करनेका उद्देश्य केवल सरीर रक्षाके लिए ही है।

अपथ्य करनेवाली चीजें खानेसे जिस तरह नुकशान होता है, वैसे ही दूषित जल पीनेसे नुकसान होता है। पानीमें चींटी आदि

सूक्ष्म जीवोंके मर जानेसे पाचन शक्तिमें नुकशान पहुंचता है। ऐसे पानीके पीनेसे अनेक मानसिक रोग हो जाते हैं।

बडी बडी नदियों, तलावों तथा कुओंका जल प्रायः शुद्ध होता है। अगर जहांपर यह कोई भी साधन न हो तो जलस्थानका पानी स्वच्छ करके उपयोगमें लाना चाहिए। जल स्वच्छ करनेका सहज उपाय यह है कि मैले पानीमें एक छटाक फिटकिरी पीसकर डाल दें। २-३ घंटा बाद मैला जल आपसे ही नीचे बैठ जावेगा और स्वच्छ जल ऊपर आ जावेगा। इस तरहका जल पीनेसे हानि नहीं होती।

भोजन करनेके पश्चात सोना हानिकारी है। अतएव भोजनके पश्चात् घंटा, आधा घंटा आमोद प्रमोदमें व्यतीत करना अच्छा है। पश्चात् दैनिक कार्योंमें प्रवेश करना चाहिए। शामको जहांतक हो सूर्यास्तके पहले ही भोजन करना उचित है। भोजनके बाद टहलनेको जाना नितान्त आवश्यक है। टहलनेके पश्चात् थोडे समय तक विश्रान्ति लेकर पानी पीना चाहिए। फिर १० बजे रात्रि तक जो कुछ कार्य हो उसे करे। १० बजेसे अधिक जागना हानिकारक है। कारण—शरीर दुर्बल हो जाता है, सिर दूखने लगता है, नेत्रोंसे चिनगारियां निकलने लगती हैं और चित्त तथा उसकी स्फूर्तिका ह्रास हो जाता है। रात्रिको अधिक जागनेसे और भी कई पीडायें होती हैं।

निवास स्थानमें शुद्ध वायुकी अत्यंत आवश्यकता है। अत एव हवाके आने जानेके लिये प्रातःकालसे सोनेके पहले तक दरवाजा और खिडकियां खुली रहनी चाहिएं। निद्रावस्थामें शरीरको शीतल वायु लगनेसे पीडा होती है, अत एव पतली चादर ओढ़कर सोना चाहिए। नदीके किनारे तथा मैदानकी वायु स्वास्थ्यको

बहुत लाभ पहुँचाती है, अत एव ऐसे स्थानोंमे प्रति दिन घूमनेको लिए जाना चाहिए।

स्वाससे शुद्ध वायु शरीरमें प्रवेश करती है और अपकारी वायु बाहर निकलती है। निकली हुई वायुको स्वास द्वारा फिरसे गृहण करनेसे नुकसान होता है। इसलिए मुंह ढांककर कदापि न सोना चाहिए। एक पलंगपर अधिक मनुष्योंके सोनेसे अंतरगत वायु दूषित हो जाती है। मल मूत्र आदि दुर्गंधित वस्तुओंके कीडे वायुमें मिलकर उसे दूषित करते हैं, जिससे हैजा, ज्वर, प्लीहा आदि रोग फैल जाते हैं। निवास स्थानकी वायु अगर दूषित हो गई हो तो उसके सब दरवाजे खोलकर हवा शुद्ध करनेके लिये धूप, गंधक आदि जलाना चाहिए।

नित्य प्रति व्यवहारमें आने वाले वस्त्र प्रायः स्वच्छ रहना चाहिए। निवासस्थानके पास दुर्गंधित पदार्थ रखना उचित नहीं। कहीं भी मध्यस्थानमें बैठनेकी जगहके पास तथा दिवालों-पर थूकना न चाहिए। गृह सामग्री स्वच्छ रखनेसे चित्त प्रसन्न तथा निरोग रहता है।

जैसे प्रति दिन पुष्टकारी चीज खाना उचित है वैसे ही दोनों समय घूमना आवश्यक है। जो आलस्यसे दिन काटते हैं उन्हें भूक अच्छी नहीं लगती, उनका शरीर दुर्बल हो जाता है और कोठा साफ नहीं रहता है। ऐसे लोग हर समय पीडा सहन करते और अकालमें मृत्युके भोज्य बन बैठते हैं। जो दोनों समय शरीरको संचालित करते और मनको एक ही विषयमें न लगाकर अनेक तरहके नये नये विषयोंमें लगाते रहते है, उनके शरीरमें ताकत आती है, और

यदि वे बीमार भी हों तब भी उनकी बीमारी बहुत कम रह जाती है। ऐसे लोग चिर समय तक जीकर बहुत काम कर सकते हैं। अत एव परिश्रमकी तरफ एक दिन भी अवहेलना न करना चाहिए।

अभ्यास करनेसे शरीर और मन बढ़ाया जा सकता है। अधिक बलकी सब जगह आवश्यकता होती है। बलवान आदमी सहजहीमें अपनेसे अधिक आदमियोंको पराजित कर सकता है। देखो! जापान ने इतने बडे रूसको तथा बल्गेरिया, रूमानियां आदिने टर्कीको किस तरह पराजित किया। अत एव जिस तरहसे बलवृद्धि हो, ऐसी चेष्टा निरंतर करना उचित है। देखो! अंग्रेजोंमें इतना बल व साहस कहांसे आया? इसका एक मात्र यही उत्तर दिया जा सकता है कि वे लोग शरीररक्षाकी तरफ विशेष लक्ष रखते हैं। इसलिए उनका शरीर सुडौल, विलक्षण बुद्धिवाला, अधिक परिश्रम उठानेमें समर्थ और दीर्घजीवी होता है। हमारी अपेक्षा उन्हें रोग कम होते हैं। हम अनियम आहार करते, बल और साहसके बढ़ानेकी चेष्टा नहीं करते, इसलिए हम साहस हीन, भीरु और दुर्बल होते हैं।

शरीर संचालन करनेमें पहले अधिक परिश्रम होता है, परन्तु नियमानुसार प्रति दिन करनेसे आदत पड़ जाती है, उससे शरीर बलवान होता है, पीडाका ह्रास होता है और आयु बढती है। इस लिए यदि तुम चिरजीवी, बलवान् बुद्धिवान और ऋद्धिशाली होना चाहते हो तो उपर्युक्त नियमोंका भले प्रकार पालन करो। ऐसा करनेसे ये सब गुण तुम्हें प्राप्त हो सकेंगे। *

दुलीचंद सिंघई—बम्बई.

---

* बंगला ज्ञानाकुरसे

हाय ! तुमने जन्म लेकर क्या किया ?

(१)

सद्गुणोंको दुर्व्यसनमें खो चुके ।
आलसी बनकर निकम्मे हो चुके ॥
नीच कर्मोंका बुरा फल पा चुके ।
व्याधियोंको पेटभर अपना चुके ॥
कह चुके सब लोग तुमको जालिया ।
हाय ! तुमने जन्म लेकर क्या किया ? ॥

(२)

देशभक्तोंमें न गणना पा सके ।
जातिके नेता नहीं कहला सके ॥
कुछ नहीं साहित्य-सेवा कर सके ।
स्वार्थमें भूले महोदर भर सके ॥
राष्ट्रको निस्तेज निर्बलता दिया ।
हाय ! तुमने जन्म लेकर क्या किया ? ॥

(३)

शान्ति, शिक्षा, शीलता, शालीनता ।
खो चुके तुम शूरता स्वाधीनता ॥
कर्मवीरोंने कमाली हीनता ।
पास रखली प्राणप्यारी दीनता ॥

जो निरुद्यम है भला वह क्या जिया ? ।
हाय ! तुमने जन्म लेकर क्या किया ? ॥

(४)

दीन दुखियोंकी कमी सुधिली नहीं ।
भूलकर जगकी भलाई की नहीं ॥
धर सके यशराशि धरणीपर नहीं ।
आज प्रतिमा–प्राप्तिका अवसर नहीं ॥
क्यों न भगवत्प्रेमका प्याला पिया ? ।
हाय ! तुमने जन्म लेकर क्या किया ? ॥

भास्कर ।

फिर एक नई आग लगाई गई ।

(लेखक–श्रीयुत पं. खूबचन्दजी)

आलोचना, प्रत्यालोचना करना बुरा नहीं है, बल्कि बुद्धिके विकाशका कारण है। पाश्चात्य विद्वानोंने तो इस विषयको इतना महत्व दिया है कि दूसरोंके विचारों और लेखोंके गुण दोष दिखानेके लिए उन्हें हजारों ग्रन्थ लिख डालना पडे हैं। सच मुच है भी यह विषय बडे महत्वका। इससे देशी साहित्य, विद्या और बुद्धिकी बडी उन्नति होती है। विचार उन्नत और प्रौढ़ होते हैं। पर हां समालोचना सच्ची और उदार हृदयसे की गई हो तो। संकीर्ण समालोचककी आलोचनासे लाभके बदले हानि होती है, देशमें

कुविचारोंकी क्रान्ति होती है और परस्परमें द्वेष तथा ईर्षाकी वृद्धि होती है। इसीलिए हमने ऊपर कहा कि आलोचना प्रत्यालोचना करना बुरा नहीं है। पर वह शान्ततासे की गई हो।

भारतवर्षमें भी उक्त विषयकी चर्चा चर्ची जाने लगी है। हम इस जगह औरोंका जिकर न कर जैनपत्रोंके सम्बन्धमें कुछ विचार करते हैं। जैन समाजमें कितने पत्र प्रकाशित होते हैं और उनकी कैसी हालत है? इससे पाठक अपरिचित न होंगे। जब हम इस विषय-पर विचार करते हैं कि जैन समाजमें पत्र प्रकाशित करनेकी जरूरत है या नहीं? और है तो किस लिए? जातिको लाभ पहुँ-चानेके लिए या उनकी हालत बिगाड देनेके लिए? उसमें उन्नत विचारोंकी क्रांति होनेके लिए या परस्परमें ईर्षा, द्वेपके विचारोंकी बढ़वारीके लिए? इन सब प्रश्नोंका संक्षिप्त उत्तर यह दिया जा सकता है कि जैन समाजको पत्रोंकी आवश्यकता है। वह इसलिए कि उसका पतित दशासे निस्तार हो। वह और जातियोंकी देखा-देखी अपनी उन्नतिके लिए आगे बढ़े और अपनी या देशकी विद्या-वृद्धि, श्रीवृद्धिकी सहायक हो। तो अब देखना चाहिए कि जैनपत्र अपनी जातिकी उन्नतिकी आशा कहां तक पूरी कर रहे हैं? मैं यह नहीं कहता कि जैन समाजके सब पत्र सर्वथा निर्दोष सम्पादित होते होंगे, पर जैनगजटने तो उन सबका नम्बर ले लिया है। वह जातिकी भलाई इसीमें समझता है कि जितने मेरे विचारोंके विरुद्ध विचारवाले हैं वे सब अन्यायी हैं, दुराचारी हैं, मिथ्यात्वी हैं, लोगोंको धोखा देते हैं, समाजको अधोगतिमें लिये जा रहे हैं और मैं जो कुछ करता हूं वह सर्वोत्तम और सबके लिए आदर्श कार्य है। यदि

पाठक भूले न हों तो उन्हें दस्से बीसोंके विषयका आन्दोलन अच्छी तरह याद होगा। उसकी आड़मे अच्छे विद्वानों और जातिकी निष्कामसेवा करनेवालोंको किस तरहकी मनमानी सुनाई गईं थीं? किस प्रकार जातीयप्रेम—वात्सल्यका—परिचय दिया गया था? पाठक, हमारे इस लिखनेका यह अर्थ न करें कि हम आलोचना प्रत्यालोचनाको बुरी समझते हों, बल्कि उस समय हमें बड़ी खुशी होती जब कि जैनगजट शान्तताके साथ साथ प्रबल युक्तियों द्वारा अपना पक्ष समर्थन करके एक सत्य समालोचक कह लाता और अपने विचारोंकी छाप अपने विरुद्ध विचारवालोंके हृदयपर भी अंकित कर देता। पर उसे जब अपना सन्तप्त हृदय ही शान्त करना था तब ऐसा करना कैसे मंजूर हो सकता था। भला जो काम पवित्र और निष्पक्षपात हृदयसे होता है, वह क्या कभी गालियां देने और दूसरोंको भला बुरा कहनेसे हुआ है? नहीं। जैनगज-टके इस कर्तव्यको संभवतः ही किसीने प्रेमकी दृष्टिसे देखा होगा। खैर, जैनियोंकी तो जाने दीजिए, उसकी एक बिहारकी पत्रिकाने जो समालोचनाकी है उसीसे अनुमान कीजिए कि वह किस योग्यतासे प्रकाशित होता है। उसने लिखा है कि "तुम अपना राग आलापते जाओ, चाहे कोई सुने या न सुने।" क्या पत्र इसी तरह सम्पादन किये जाते है? जिनके विषयमें लोगोंको ऐसी सम्मतियां जाहिर करना पड़े! जबसे जैनगजट अलीगढ़ गया है तबसे हम बराबर उसे देखते आते हैं, पर आज तक हमें कोई एक भी ऐसा लेख उसमें पढ़नेको नहीं मिला जो जैन जातिके अभ्युत्थानकी पवित्र वासनासे लिखा गया हो।

फिर उससे जैन जातिकी आशाएं कहां तक पूरी हो सकेगी यह सन्देहास्पद है।

दस्से बीसोंका झगड़ा किसी तरह निर्बल हुआ था कि अब एक और नया उपद्रव जैनगजटने अपने हाथमें लिया है—शान्त समाजमें फिर नई आग लगानेका सूत्रपात किया है। पर बात यह है कि स्वभावो दुरतिक्रमः अर्थात् स्वभावका छूटना मुश्किल है। इसीसे वह अपने विरुद्ध विचारवालोंके अच्छे कार्योंको भी सदा बुरी निगाहसे देखता है। पाठकोंको याद होगा कि तत्वप्रकाशिनीसभाके गत अधिवेशनमें एक क्रिश्चियन धर्मोपदेशकके प्रश्न करने पर कि "दुनियांमें बहुतसे मुल्क या टापू ऐसे हैं कि जहां सदा बर्फ पडता रहता है, वहांके मनुष्य मछली आदिका मांस खाकर गुजर करते हैं। अगर वो अहिंसा धर्मका पालन करें तो उनका जीवन क्यों कर कायम रहे। इससे सिद्ध होता है कि जैनधर्म सर्वत्र संसारके लिए नहीं है।" इसका उत्तर यह दिया गया था कि जहां मनुष्य रहते हैं वहां उनके जीवनोपयोगी वृक्षादि वनस्पतियोंका होना अवश्यं भावी है। यदि दुर्जनतोषन्यायसे यह मान भी लिया जाय तो भी हानि नहीं। क्योंकि वहांके मनुष्य एक प्रकारके मांसका त्याग करते हुए या सबको ग्रहण करते हुए अव्रतसम्यग्दृष्टिरूप जैनधर्म धारणकर अपनी शक्तिके अनुसार कल्याण कर सकते हैं। अव्रतसम्यग्दृष्टिका लक्षण गोमट्टसारमें यों कहा गया है कि "जो न इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त हो और न स्थावर वा त्रस हिंसाका त्यागी हो, किन्तु जिन भगवानके तत्वका श्रद्धान करनेवाला हो।" इसी विषयको लेकर देहलीमें पं. गोपालदासजीसे किसीने प्रश्न किया था।

उक्त अभिप्रायको लेकर उनके दिए हुए उत्तरसे चिढ़कर उनके विरुद्ध आन्दोलनकी भित्ति खड़ी की गई है और उन्हें मनमानी सुनाई जा रही हैं। उधर भगवान्से भी गुहार मचाई जा रही है कि "हे नाथ! अब तो कलिकाल आ गया। आपका धर्म मांस मदिरा खानेवाले भी धारण करेंगे। हाय! फिर हमें कौन पूछेगा? आपने तो यह अमानत केवल हम लोगोंके लिए ही सौंपी थी—हम ही इसके पालन करनेके अधिकारी नियत किये गये थे, इसका मौरूसी पट्टा तो आपने हमें ही दिया था, पर अब तो इससे सब कल्याण करने लगेंगे, हम बडे संकटमें पडे हैं, हमसे अब आपकी अमानतकी रक्षा होना कठिन है। आप ही पीछी इसे सम्हालिए। आप न सम्हालेंगे तो जबरन हमें छोड देना पडेगी—आदि।" अच्छा साहब आप भगवान्की अमानतकी रक्षा नहीं कर सकते तो उसे छोड दीजिए और न आप किसी तरहकी चिन्ता ही कीजिए। क्योंकि पहले तो उसके रक्षक आप इने गिने थे, पर अब तो सारा संसार उसका रक्षक बनेगा और बडी दृढ़तासे उसे सुरक्षित रक्खेगा। हम नहीं जानते कि यह आग कहां तक भयंकरता धारण करेगी? और कहां तक इसके द्वारा जैन समाजकी छातीपर गहरे घाव किये जायँगे? परमात्मा रक्षा करे।

पाठक, उपर जो गोमट्टसारका प्रमाण दिया गया है, उसे सब स्वीकार तो करते हैं, पर उसमें मीनमेष यह निकाला गया है कि गाथामें अपि शद्ब है और उसका मतलब यह है कि अव्रतसम्यग्दृष्टि दयालु होता है, इसलिए वह कभी ऐसा काम नहीं करता। फिर यह क्यों कहा गया कि वह मांस खाकर भी जैनी रह सकता है?।

किन्तु मांस खानेवाला तो कभी जैनी हो ही नहीं सकता। पहले तो वह प्रश्न आपत्कालका था और उसी आशयको लेकर उत्तर दिया गया था। वह भी यह कहकर कि पहले तो ऐसा कोई देश न होगा कि जहां जीवनोपयोगी वनस्पतियां आदि न हों और कदाचित् ऐसा हो भी तो वह मांस खाकर जैनी रह सकता है। इस उत्तरसे यह तो कभी सिद्ध नहीं होता कि मांसकी विधि करदी गई हो। हां संभावना है। जो लोग इस उत्तरको विधिरूप समझकर लोगोंको भडकाते हैं वे वडी गल्ती करते हैं। हमने माना कि अव्रतसम्यग्दृष्टि दयालु होता है, पर यह अर्थ कहांसे निकाला गया कि मांसखानेवालेके दया भाव होते ही नहीं और न इससे वह जैन धर्मका पात्र हो सकता है? यदि यह अर्थ अपि शब्दसे किया गया हो तो हम पूछते हैं कि फिर अपिशब्द की ही नहीं किन्तु उसे इसके भी कहनेकी कुछ जरूरत नहीं थी। साफ साफ यह लिख देना चाहिए था कि अव्रत-सम्यग्दृष्टि ऐसा काम ही नहीं करता है। क्यों सबको भ्रममें डाला गया? देखना चाहिए कि दर असलमें अपि शब्दका क्या भाव है? और क्यों उसे शास्त्रकारोंने लिखा है?

" णो इंदियेसु " आदि गाथामें सम्यग्दृष्टिके दो विपेशण दिये गये हैं। एक तो यह कि वह इन्द्रियके विषयोंसे तथा स्थावर और त्रस जीवोंकी हिंसासे विरक्त नहीं है, दूसरे यह कि वह अविरत है। इसमें अविरत शब्द अन्त्यदीपक है। अंत्यदीपकका भाव यह है कि जैसे मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र गुणस्थानवाले अविरत हैं वैसे ही यह भी अविरत है। पर इस कथनसे जब सब गुणस्थानवाले एकसे दिखने लगे—उनमें कुछ तारतम्य न जान पडने लगा—तब

ग्रन्थकारको अपि शब्द देकर यह खुलासा करना पडा कि चारों गुणस्थानवाले अविरत हैं और उनकी क्रियाएँभी समान हैं। पर फिर भी अविरतसम्यग्दृष्टिके भावोंमें और उनके भावोंमें जमीन आसमानका अन्तर है। मिथ्यादृष्टि जितने काम करता है वह रुचिसे करता है और उन्हें अच्छा समझता है—उनसे अपना जीवन सफल गिनता है। पर सम्यग्दृष्टिमें यह बात नहीं है। सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेसे उसमें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि गुण प्रकट होगये हैं। इसलिए वह हिंसा आदि करता हुआ भी उसे बुरी समझता है, उससे घृणा करता है, वह सदा यह चाहता रहता है कब वह सुदिन-पुण्य-दिन—हो जबमें इन बुरे कामोंका परित्याग करू? पर चारित्रमोहिनी कर्मका प्रवल उदय उसे ऐसा करने नहीं देता। उसकी प्रचण्ड शक्ति उसे अपने वश किये रहती है। यह शक्ति अपि शब्दमें ही जो अविरतसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आदिकोंकी समान क्रिया होनेपर भी उनमें अन्तर सिद्ध करता है। संस्कृत टीकाकारोंने इसी अभिप्रायको लेकर उक्त गाथाकी टीका की है।

यः इन्द्रियविषयेषु नो विरतः तथा स्थावरत्रसजीववधेपि नो विरतः। जिनोक्तं प्रवचनं श्रद्दधाति स जीवः अविरतसम्यग्दृष्टिर्भवति। अनेनासंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति समानाधिकरणत्वं समर्थितं जातं। अपि शब्देन संवेगादिसम्यक्त्वगुणाः सूच्यन्ते। अत्रत्यमविरतत्वविशेषणमन्त्यदीपकत्वादधस्तनगुणस्थानेष्वपि सम्बन्धनीयं। अपिशब्देनानुकम्पापि।

फिर भी यदि अपि शब्दका त्याग अर्थ ही किया जाय तो यह वतलाना चाहिए कि ऐसा अर्थ करनेमें प्रमाण क्या है? ग्रन्थकारने त्याग शब्दकी जगह अपि शब्द क्यों दिया? और वडी भारी वात

यह है कि जब उसके त्याग ही होगया तब वह अविरत कैसे बना रहा? उसे तो फिर व्रती कहना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि जैसे पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थाश्रम, भोगादिकोंको बुरा जानता हुआ भी— उनके त्यागकी उत्कट इच्छा रखता हुआ भी वह प्रत्याख्यानावरणी कषायके उदयसे उन्हें छोड नहीं सकता। ठीक यही हालत अविरतसम्यग्दृष्टिकी है जो वह हिंसा आदिकको बुरा जानकर भी जबरन उन्हें छोड नही पाता। नहीं तो भला बतलाओ देशसंयत, संसारभोगोंको बहुत बुरा जानकर भी मुनि क्यों नहीं बन जाता? पर बात यह है कि सब बातें समय पाकर ही होती हैं। और एक बात हम पूछते हैं—एक हिंसकको अपने निर्वाहके लिए अगत्या हिंसा करनी पडती है, परन्तु है उसे उससे बडी घृणा। वह सदा अपने बुरे कर्मका पश्चात्ताप किया करता है कि—हे नाथ! मैं बडा अभागा हूं, महापापी हूं, मेरा यह पापमय जीवन मुझे दिनोंदिन पतित कर रहा है। भगवन्! मुझ पापीकी रक्षा करो-संसार समुद्रमें वहते हुए मुझ पापीका हाथ पकडो—आदि। कहनेका यह मतलब है कि उसे सचमुच अपने पापकर्मसे बहुत घृणा है, उसका हृदय दयासे पसीज रहा है। पर उसे कुछ भी आधार—आश्रय—न होनेसे हिंसा उसे करनी ही पडती है। बतलाइए ऐसा पुरुष और जब कि उसके परिणाम इतने कोमल हैं, अव्रतसम्यग्दृष्टि हो सकता है या नहीं? यदि हो सकता है तब तो यह अवश्य मानना ही पडेगा कि वे मांस-खानेवाले भी ऐसे हो सकते हैं—जैनधर्म पाल सकते हैं। क्योंकि खानेवालेका पाप हिंसा करनेवालेसे किसी अंशमें कम है। और यदि नहीं हो सकता तो जैसे जिसके परिणाम होते हैं उसे वैसा

ही फल होता है और इसी अभिप्रायको लेकर जो एक जगह अमृतचन्द्रस्वामीने भी लिखा है कि—

अविधायापि हि हिंसां हिंसाफलभाजनं भवत्येकः ।
कृत्वाप्यपरो हिंसां हिंसाफलभाजनं न स्यात् ॥

अर्थात् एक तो हिंसा न करके भी उसका फल भोगता है और दूसरा हिंसा करके भी उसका फल नही भोगता । इसका कारण क्या ? कहना होगा कि केवल उसके परिणाम—भाव-फिर उस वेचारेने ही क्या विगाडा ? जिसके परिणामोंमें बुरे कामोंसे वहुत कुछ घृणा रहनेपर भी वह जैन धर्मका पात्र न हो—अव्रतसम्यग्दृष्टि न कहला सके—तो अब उक्त सिद्धान्तपर हमें कलम फेर देनी चाहिए ।

एक बात और वतलानी चाहिए कि धर्मराज युधिष्ठिरने, जूआ खेली थी, जूआ भी कैसी ? जिसमें धन सम्पति, राज्य, ऐश्वर्य यहां तक कि अपनी स्त्री भी उन्हें हार जानी पडी, चारुदत्तने वेश्याका सेवन किया था, शराव पिया था, उस वक्त उन लोगोंका सम्यक्त्व नष्ट होगया था या बना रहा था ? जूआको सातों व्यसनोंमें प्रधान वतलाया गया है । उसके सेवन करनेपर भी शास्त्रकारोंने उन्हें क्यों धर्मात्मा, सम्यग्दृष्टि, लिखा ? खदिरसार जो एक भील था, क्यों केवल कौवेका मांस छोड देनेपर ही जैनी वन गया ? क्यो ये तो व्यसनोंके सेवन करनेपर भी जैनी ही कहलाये और दूसरे देशवासी जिन्हें कि अगत्या—अनुपाय होकर—कभी—कदाचित्—मांससे जीवन निर्वाह करना पडे तो वे जैनी हो ही नही सकते ? भला

उन दोनोंके परिणामोंमें क्या भिन्नता है ? भरतजी छानवे छानवे हजार स्त्रियोंको भोग कर, नाना प्रकार राजैश्वर्यका आडंबर रख कर भी घरहीमें वैरागी कहला सकें और वे दयालु होते हुए भी जैनी भी न बन सके ? क्या यह गूढ रहस्य समझाया जा सकता है ? ऐसा विश्वास क्यों किया जाय ?

मांस खानेवाला जैनी नहीं हो सकता इसके लिए एक और कारण बतलाया जाता है। वह यह कि मांस खानेवालेको विशुद्धि-लब्धि नहीं होती और बिना विशुद्धिलब्धिके वह सम्यक्त्वका पात्र-जैनी-नहीं बन सकता। यह कहना भी नितान्त भ्रम भरा हुआ है कि उस दयालुके विशुद्धिलब्धि नहीं होती। यदि उसके विशुद्धि-लब्धि न होती तो उसके दयाभाव-परिणामोंमें कोमलता-कैसे होती ? पर सच बात यह है कि विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं यह भी अभी उन्हें मालूम नहीं है। तब मालूम क्या है ? केवल तोतेकी तरह शब्दका रटन। यदि विशुद्धिलब्धिका स्वरूप समझा होता तो कभी शास्त्रविरुद्ध कथन करनेका उन्हें दुःसाहस न होता ! अस्तु ! वे यह बतलावें कि विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं। उसमें पात्र और परिणामोंकी अपेक्षा कुछ तारतम्य होता है या सबहीके विशुद्धिलब्धि ऊंचे दरजेकी होती है ? यदि उसमें तारतम्य-न्यूनाधिकता-है, तब यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस मांस खानेवालेमें, जिसकी प्रवृत्ति मिथ्यादृष्टिकी तरह निरर्गल नहीं है, विशुद्धिलब्धि है। क्योंकि एकमें दयाका नाम निशान नहीं, दूसरेमें दया है। एक उसे सर्वथा अच्छा जानता है, दूसरा बुरा जानता है-छोडना चाहता है-पर अप्रत्याख्याना-वरणी कषायके उदयसे वैसा करनेको अशक्य है और इसी विशुद्धिल-

ब्धिके तारतम्यसे आत्मा आगे आगेके गुणस्थानोंमे चढ़ता हुआ एक दिन उस अन्तिम दरजेकी लब्धिको भी प्राप्त कर लेता है। और यदि उसमें तारतम्य नहीं माना जाय तो क्या बाधा आयगी उसे सब सहज ही जान सकते हैं। हम नहीं कह सकते कि उस वक्त जैन सिद्धान्तकी नीव सुदृढ रह सकेगी या नहीं ? आक्षेप करनेवालोंको खुलासा करना चाहिए कि विशुद्धिलब्धिसे उनका क्या मतलब है ? केवल नाम मात्र लिख देनेसे कि विशुद्धिलब्धि मांस खानेवालेके होती ही नहीं, कुछ मतलब न सधेगा। अब भोले भक्तोंके फुसलानेका जमाना नहीं रहा। एक एक शब्द, एक एक वाक्य खूब अच्छी तरह, जबतक कि प्रश्न करताका संतोष न हो, समझाना पडेगा—वे जिस तरह पूछें उसी तरह उन्हें उत्तर देना होगा। यह खूब ध्यानमें रखना चाहिए कि बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।

शास्त्रोंके मार्गको ये आन्दोलन उठानेवाले न जानते होंगे ऐसा नहीं है। जानते होंगे। पर फिर भी उनके आन्दोलन उठानेका कारण है। दस्से बीसोंके मामलेमें बड़ी बड़ी सभाएं की गईं थीं। उनमें जैनियोंसे यह गुहार मचाई गई थी कि पं. गोपालदासजीके मुँहसे कोई शास्त्र न सुने, वे जातिसे पतित किये जायँ—आदि। पर उनकी इस गुहारका कुछ असर न हुआ। उन्हें नीचा देखना पड़ा। इससे पंडितजीकी प्रखर पाण्डित्य और चमका। वे अधिक अधिक प्रख्यात होने लगे। तब फिर कुछ लोगोंके दिलमें उन्हें नीचा दिखानेकी सूझी और जिनका खयाल दूसरोंके ऐब निकालनेके लिए ही रहता है उन्हें कुछ न कुछ भला या बुरा मार्ग मिल ही जाता है। उसीके लिए यह नवीन आन्दोलनकी आग लगाई गई है। देखते हैं वे

इसके द्वारा कहांतक अपने उद्देश्यकी सिद्धि करते हैं?

पंडितजी जैनधर्मके कैसे जानकार हैं यह बात उनके प्रतिपक्षी भी अच्छी तरह जानते होंगे। न केवल जैनियोंने किन्तु जैनेतर विद्वानोंने भी उनके पाण्डित्यकी खूब तारीफ की है। पंडिजीकी स्पष्ट-वादिता एवं जिनागमके अविरुद्ध प्रतिपादनशैलीसे आबाल परिचित हैं। उनके सामने कोई लाख रुपयोंकी ढेरी भी करदे तब भी वे जैनधर्मके विरुद्ध कभी प्रतिपादन नहीं करेंगे। ऐसे धुरंधर विद्वान्के विषयमें इस प्रकार कूटनीतिका परिचय देना न जाने क्यों उन्हें रुचता होगा? भगवान् जाने!

पहले तो पंडितजी कभी अन्यथा प्रतिपादन करनेवाले नहीं, फिर भी हम थोड़ी देरके लिए यह मान भी लें कि वे भी छद्मस्थ हैं। इसलिए ऐसा होना असंभव भी नहीं। तब यदि कदाचित् उनसे भूल हो भी जाय तो उस वक्त हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए? क्या इस प्रकार अभिमान, ईर्षा और पक्षपातसे उनके विरुद्ध ऐसा आन्दो-लन या शान्ति और सहिष्णुतासे उनके प्रति प्रेमभाव? हमारा तो विश्वास है कि संकीर्णसे संकीर्ण विचारवाला भी ऐसे वक्तमें अपने जातीय भाईका साथ संभवतः ही न देगा। फिर समझदारके लिए क्या ऐसा करना उचित है? कभी नहीं।

सज्जनो! इस परस्परकी कटाकटीसे कुछ लाभ नहीं है, सिवा इसके कि जातिकी हानि हो। कुछ तो सोचो, जब हम जातीय भाइयोंकी ही यह हालत है तब हम औरोंका क्या भला कर सकेंगे। बेचारा जैन समाज तो पहलेहीसे दिनों दिन रसातलमें मिला जा रहा है, अब तो उसकी कुछ रक्षा करो—उसे मिलकर बचाओ। तुम्हें तो इस

समय संसारकी जातियोंसे आगे बढना चाहिए। परस्परमें तो बहुत कुछ मर मिट लिए। अब वह समय नहीं रहा। कुछ उन्नति करो। भाइयोंको सुमार्ग सुझाओ। इसीमें तुम्हारा, तुम्हारी जातिका और तुम्हारे देशका भला है। उनका कल्याण कर जीवन सफल करो। भगवान् महावीरके पवित्र मार्गका संसारमें प्रचार कर दो, जिससे जीवमात्र शान्तिलाभ कर सकें।

उपसंहार।

इस लेखका अभिप्राय यह नहीं निकालना चाहिए कि इसके द्वारा मांसकी विधि की गई है। किन्तु लेखकके अभिप्रायोंको समझकर तत्त्वनिर्णय करना चाहिए कि दर असलमें बात क्या है? इसका सार यह है कि वे पुरुष जिन्हें बर्फ पडनेवाले देशोंमें रहना पडता है, यदि उन देशोंमें जीवनके साधन भूत किसी प्रकारके अन्न या वृक्षादिका सर्वथा अभाव हो तो अगत्या—उस वक्त आपत्काल होनेसे—वे किसी एक प्रकारके मांसको छोडकर या सबको खाते हुए भी अव्रतसम्यग्दृष्टि रूप जैनधर्मको अपने दयाभावोंके अनुसार पालन कर अपना हित साधन कर सकते हैं। क्योंकि जैन ग्रन्थोंमें खदिरसार आदिके बहुतसे ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जो केवल एक प्रकारके मांसको छोड देनेपर भी जैनी बने रहे। इस विषयमें केवल परिणामोंकी विशेषतासे ही ऐसा होता है। इतनेपर भी लेखकके अभिप्रायको ठीक ठीक न समझकर जो लोगोंके भडकानेका यत्न करेंगे समझना चाहिए कि वे शास्त्रकी पवित्र मर्यादा एवं सत्यका गला घोटते हैं—उसका खून करते हैं। इसलिए पाठकोंको जरा उदार हृदयके साथ इस लेखका पर्यालोचन करना चाहिए।

जातिद्रोह ।

(इन्दौरके श्रीमानोंका दुःसाहस)

जिस लेखमालाके लिखनेका हम आरंभ करते हैं, संभव है इसे पढ़कर हमारे बहुतसे सज्जन–सेठोंकी हमपर अकृपा हो । हांला कि इस लेखमालाका उद्देश्य यह नहीं है कि वह किसी बुरी नीयतसे लिखी जाती है, पर तब भी जिस विषयका इसमें उल्लेख रहेगा वह सबको नहीं तो खासकर इन्दौरके सेठोंको तो अवश्य खटकेगा–इससे उन्हें अरुचि पैदा होगी । जो हो, इसकी हमें कुछ परवा नहीं । जब हमारा हृदय पवित्र है–किसीका हमें पक्षपात नहीं है–तब हमारा कार्य भी बुरा नहीं हो सकता । हम इस लेखमें जिस विषयकी चर्चा करेंगे वह केवल अपनी जातिकी भलाईकी इच्छासे । यदि हमें अपनी जातिकी दुर्दसासे दुःख न हुआ होता–उसकी गिरती हुई हालत पर यदि हमारा हृदय न पसीजा होता–तो हमें इस विषयके उठानेकी कुछ जरूरत न थी । हमारा यह अभिप्राय नहीं कि हम किसीपर आक्षेप करें । पर इतना जरूर है कि जो बात जैसी बीती होगी उसकी सत्य सत्य आलोचना अवश्य करेंगे । विषय तो किसीके बुरा माननेका नहीं है । पर तब भी हम उन सज्जनोंसे पहले ही क्षमाके लिए प्रार्थना किए लेते है, जिन्हें यह विषय अच्छा न जाने पडे । हमारे लिए, चाहे धनवान् हो या निर्धन, विद्वान् हो या अपढ, पर वह यदि हमारी जातिका है तो समान आदर–समान प्रेमका–पात्र है । उसे हम अपने भाईसे किसी तरह कम नहीं गिनते । यही कारण है जो यह माला बिलकुल निष्प-

क्षपात दृष्टिसे लिखी जायगी। हमें आशा है कि हमारे पाठक इसके लिए अपने हृदयको उदार बनायँगे।

यह बात इतिहास सिद्ध है कि जातियोंके अधःपतनके बहुतसे कारण हैं पर उन सबमें जातीयभावका ह्रास जितना फूटसे होता है उतना औरसे नहीं। यदि महाराणा प्रतापसे शक्तसिंहकी खटपट न होती, पृथ्वीराज और जयचन्दमें पारस्परिक द्वेषकी अग्नि न धधकती, कौरव और पाण्डवोंमें अभिमान और ईर्षाको जगह न मिलती तो आज भारतका यह अधःपतन न होता—उसे दूसरोंकी दासता स्वीकार कर अपना सर्वस्व न खो बैठना पडता। ठीक यही हालत भारतकी जातियोंकी है। कई तो इसी आपसकी मार काटसे सदाके लिए मृत्युकी शान्तिदायक गोदमें सोगई। उनका आज नाम निशान भी नहीं रहा और बहुतसी दिनपर दिन नष्ट होती जाती हैं। उन्होंमे हमारी जैन जातिकी भी गणना है। कालके प्रभावसे, अभिमानी, दुराग्रही और ऐश्वर्यमत्त लोगोंके अत्याचारसे जैन जातिकी महत्ता छिन्न भिन्न होगई है। जो लोग समर्थ हैं, वे अपने धनमदके सामने जाति या देशके नष्ट भ्रष्ट होनेकी कुछ परवा न कर जो चाहते हैं उसे कर गुजरते हैं। वे यह नही विचारते कि केवल अपनी स्वार्थवासनाके लिए-खोटे अभिमानकी रक्षाके लिए—जातिकी सम्मिलित शक्तिको धूलमें मिलाकर उसे क्यों रसातलमें पहुँचावें? धनान्ध लोगोंके लिए वादीभसिंहसूरिने बहुत ठीक लिखा है—

> मृ शृण्वन्ति न बुध्यन्ति न प्रयान्ति च सत्पथम्।
> प्रयान्तोपि न कार्यान्तं धनान्धा इति चिन्त्यताम्॥

जो धनके मदसे गर्वित होते हैं वे न किसीकी सुनते हैं, न स्वयं कुछ समझते हैं और न अच्छे मार्गपर चलते हैं। हां कभी भाग्यसे किसी अच्छे कामको करते भी हैं तो उसे पूरा नहीं कर पाते। धनवानोंकी यह लीला बडी विचारणीय है।"

हमारी जातिकी जहां जहां दुर्दशा सुनाई पड़ती है उसके कारण प्रायः धनी लोग बनते हैं। बेचारे साधारण लोगोंको तो कोई पूछता भी नहीं वे बड़ी बुरी तरह धुतकार दिये जाते हैं। मानों जातिके सब काम करनेके अधिकारका सेहरा उन्हींके सिर बांधा जा चुका हो। जातिमें जो कुरीतियां प्रचलित होती हैं वे उन्हींके द्वारा। ये ही रण्डियोंका नाच करवाते हैं, कन्याओंके विक्रयका मार्ग चलाते हैं, वृद्ध विवाह, बाल–विवाहसी भयंकर रीतियोंका रास्ता विशाल बनाते हैं, पञ्चायतियां नष्ट करते हैं, जातिमें फूट फैलाते हैं, चाहे कैसा ही बुरा या भला काम हो, यदि ये चाहते हैं तो एक वक्त उसे कर ही डालते हैं और फिर उसे बडी निष्कामवृत्तिसे। जातिके हानि लाभका विचार करना इनकी शानके विरुद्ध है।

इन्दौरके सेठोंने भी एक ऐसा ही महत्वका काम किया है। वह संसारमें उनकी कीर्तिका विस्तार करता रहेगा। विस्तार ही नहीं बल्कि जैन जातिकी वर्तमान समयकी परिस्थितिका इतिहास लिखनेवालोंको अपने इतिहासमें इस घटनाका उल्लेख करना होगा। इसके बिना उल्लेख किये उनके इतिहासका एक अंग ही अपूर्ण कहलायगा। संसारमें सब नाम कमाना चाहते हैं। उनमें प्रायः लोगोंका तो विश्वास है कि नाम अच्छे कार्योंके करनेसे होता है और आज तक संसारके जितने प्रसिद्ध महात्मा, उधारधी पुरुष हुए हैं वे सब

एकसे एक बढकर काम करके अपने नामको सदाके लिए अमर कर गये हैं। इसके विरुद्ध कहने वाले कहते हैं कि नहीं, किसी तरह हो अपना नाम प्रसिद्ध अवश्य करना चाहिए। उनके विषयमें यह श्लोक ठीक लागू हो सकता है कि–

घटं छिन्द्यात्पटं भिन्द्यात्कृत्वा रापभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धपुरुषो भवेत्॥

अर्थात्–चाहे घडेको फोडकर या वस्त्रको फाडकर अथवा गधेपर चढकर या और जिस किसी प्रकारसे प्रसिद्धि क्यों न हो, पर होना चाहिए प्रसिद्ध। यही जीवनके सार्थक करने उपाय है। यदि उनका ऐसा खयाल न होता, वे इसे घृणाकी दृष्टिसे देखते तो क्या कभी यह सम्भव था कि वे जातिकी इस तरह दुर्दशा करते? उसमें सर्वकषा फूट फैलाकर एकका एक दुश्मन बना देते? शिक्षाके विना हजारों जातिके बाल बच्चोंको रोते फिरते देखकर भी उनके लिए अपना धन खर्च न कर अदालतमें खुल हाथों उसे लुटाते? अनाथ, विधवाओंकी दुर्दशा देखकर उनपर दया न बतलाते–उन्हें दुःखसे न बचाते? जातिमें एकताका साम्राज्य स्थापित करके उसकी उन्नति न करते? पर करें क्यों? उन्हें तो नाम कमाना था. सो किसी तरह वह कमा लिया। अब चाहे जाति धूलमें मिल जाय, वे उसकी क्यों परवा करे?

जिस जातिका संसार भरकी जातियोंसे यह दावा था कि यदि कहीं जीवोंके प्रति सच्चा प्रेम करना कहा गया है तो वह मुझमें है। जिसमें संसारकी निष्काम सेवा करनेवाले भगवान् महावीरने अवतार

लेकर उसे गौरवकी चरम सीमापर पहुंचा दी थी, आज उसकी सन्तान की यह हालत—यह दुर्दशा—कि वह अपने भाईको भी सुखी नहीं देख सकती। देखना तो दूर रहा, पर उसे उल्टा अपने ही नेत्रोंके सामने दुर्दशापन्न देखना चाहती है। इसे अज्ञान, अभिमानके सिवा और क्या कहा जा सकता है। वह मनुष्य जीवनको कलंकित करनेवाले और जैनधर्मके प्रिय जीवन वात्सल्यके खून करनेकी चेष्टा करती है। जीवन प्राप्त तो इसलिए किया गया है कि उसे सबके काममें लगावें, उसके द्वारा जीवमात्रकी सेवा करें। पर हम तो खोटे अभिमानमें मत्त होकर उसका ऐसा दुपरुयोग कर रहे हैं, उसे इस तरह बुरी बुरी वासनाओंसे गन्दा बना रहे हैं कि हमें उसके भविष्यका तक विचार नहीं होता। इस प्रकार बुरे जीवनसे हम अपना भी कुछ भला करते हैं या नहीं? कभी उसपर सुबुद्धिका प्रतिबिम्ब पड़ेगा या नहीं? इसकी कुछ चिन्ता नहीं करते। यदि सबके भलेकी चिन्ता न तो न सही, पर यदि अपने ही कल्याणकी चिन्ता करते तब भी इतना तो हमसे होता कि दूसरोंका हम भला—उपकार—न करते तो उनका बुरा भी तो न करते। इतना मध्यस्थभाव ही रहना हमारे लिए तो बहुत अच्छा था। पर समाजके खोटे मान्यने अथवा धनके मदने हमें उन्मत्त बनाकर इन सब पवित्र विचारोंपर पानी फेर दिया। सचमुच हमारे लिए यह बडे कलंककी बात है कि हम पवित्र—जीवमात्रसे प्रेम करनेवाले—धर्मको पाकर भी उसकी पवित्रतामें बट्टा लगा रहे हैं। खोटे अभिमानके लिए जातिकी महती शक्तिको तोड ताडकर

उसे दूसरोंका शिकार बना रहे हैं । सच है "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

इन्दौरके सेठोंने अपनी जातिके प्रति जो उपकार किया है वह उनके लिए चाहे किसी गिनतीमें न हो, वे चाहे उसका कुछ महत्व न समझें पर सर्व साधारणके लिए, उनमें भी जो जातिको कुछ निजी सम्पत्ति समझने वाले हैं उनके लिए तो उनका कर्त्तव्य बडे महत्वका है। जातिका अधःपतन कैसे किया जाता है उसका यह आदर्श उदाहरण है। हमें आशा है कि चाहे हमारे सेठ लोग इस लेखसे लाभ न उठावें, पर जो जातिके हितमें अपना हित और उसके अहितमें अपना अहित समझते हैं वे तो अवश्य इस लेखसे बहुत कुछ तथ्य निकाल सकेंगे । उन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात हो जायगा कि जातियां कैसे नष्टकी जाती हैं और उनकी रक्षा हमें कैसे करनी चाहिए ? अस्तु।

हमारे इस लेखके प्रधान चरित्रनायक दो हैं। एक—श्रीयुत सेठ हुकमीचन्दजी और दूसरे—श्रीयुत सेठ वालचन्दजी, हालां कि उक्त दोनों सज्जनोंसे हमारी जातिका बडा गौरव है और दोनों ही जातीय-प्रेमकी दृष्टिसे हमारे लिए समान आदरके पात्र हैं, पर फिर भी "शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि" इस नीतिके अनुसार बाध्य होकर जातिके लिए जो आपका अच्छा यां बुरा कर्तव्य हुआ है, उसकी निष्पक्षपात, सरल और पवित्र हृदयसे हम सत्य सत्य समालोचना करेंगे। आशा है—उक्त सज्जन हमारे इस लेखको जातिकी शुभ कामना और उदारताके साथ पढ़नेकी कृपा करें। न तो हमारी यह इच्छा है कि हम किसीपर कटाक्ष करके,

उनके हृदयमें चिन्ता उत्पन्न करें और न यही अच्छा समझते हैं कि सत्य बातका खून कर दिया जाय—वह छिपाई जाय । इसलिए जातिकी शुभ कामनासे हमें सत्य वृतान्तके लिखनेको बाध्य होना पडता है ।

क्रमशः ।

विषविवाह ।

(गताङ्क ८-९ से आगे).

मोह ।

कन्हैया केसरके मकानसे बाहिर होकर इधर उधर घूमने लगा । स्थान निस्तब्ध, नीरव और जनशून्य था । वडे भारी बगीचेमें किसनचन्दने इस सुन्दर मकानको बनाया है । केसरको छोडकर गांव भरमें ऐसा मकान किसीका नहीं था । मकानसे कुछ दूरपर दो झोंपडियां हैं । इस समय उनमें टिम टिमाते हुए दीपककी ज्योतिका प्रकाश उनके छेदोंमेंसे बाहिर आ रहा था । इधर उधर चमकते हुए अनन्त जुगनुओंसे वृक्षोंकी शोभा बडी मनोमोहिनी बन रही थी । यह जान पडता था, मानो उनपर अमूल्य रत्न जड दिये गये हैं । वृक्षोंपर नाना तरहके सुन्दर और सुगन्धित फल फूल लग रहे थे । उनकी सौरभ सब दिशाओंको सुगन्धित किये डालती थी । बगीचेके पास ही गंगा बडे गंभीर भावसे बह रही थी । उसका श्रुति-सुखद, मधुर शब्द बडा अच्छा जान पडता था । कन्हैया यह सब शोभा देखता हुआ कुछ आगे बढ़ा । थोडी दूर जांकर

उसे एक गाडीका शब्द सुन पडा। उसे सुनकर वह चुपचाप वहींपर ठहर गया। धीरे धीरे घोडोंकी टाप भी उसे पास सुनाई दी। गाडी उसके पाससे निकलकर केसरके मकानपर जा ठहरी। उसके पीछे पीछे कन्हैया भी जा पहुंचा। उसने गाडीमेंसे किसनचन्द और रतनचन्दको उतरते देखा।

गाडीका शब्द सुनकर केसरकी मा बडी जल्दीसे बाहिर आ खडी हुई और किसनचन्दको देखकर बोली कि अच्छे तो हो, तुम्हें कुछ दिनोंसे आते न देखकर मेरे मनमें अनेक तरहकी भली बुरी कल्पनाएं उठा करती थीं। चलो अच्छा हुआ, भगवान्‌की कृपासे तुम कुशल हो। इतनेमें रतनचन्दने कहा—इन दिनों कुछ काम हो गया था, इससे न आ सके। भला केसरके विना देखे हमारे मालिकको चैन हो सकता है?

इस प्रकार बातें करते करते वे भीतर चले गये। गाडीवाला उन्हें पहुंचा कर अपने घर चला गया। कन्हैया उनका चाल चलन देखनेके लिए धीरे धीरे केसरके शयनगृहमें पहुँच कर एक ओर जा छिपा। रूप—तृष्णाकुलित किसनचन्द केसरको दो दिनसे न देखकर स्थिर न रह सका। वह उसी वक्त उसके पास जा पहुंचा। उसने विचारा था कि दो दिनसे मुझे न देख कर केसर भी मुझसी व्याकुल हुई होगी, परन्तु हाय! वह समझा नहीं कि कुलटा, धर्मभ्रष्ट हृदय मरुभूमिकी तरह नीरस होता है। उसका अपनेपर प्यार करना वैसा ही है जैसा मेंडकके प्रति सर्पका, मछली आदिके प्रति बिल्लीका और लता पत्र आदिके प्रति गाय भैंसका।

किसनचन्दको देख कर केसर लज्जावनत मुखसे बोली—यही न यमराज हैं ? कहो, दो दिनसे कहां रहे थे ?

सिर खुजाल्ते खुजाल्ते किसनचन्दने कहा—शरीर कुछ अस्वस्थ होगया था, इसलिए मैं दो दिनसे यहां न आ सका।

केसर—क्या आपकी इस अस्वस्थताने मेरी गहनोंकी मगनीको भी अस्वस्थ बना डाली है ?

किसनचन्द—जब मैंने देनेको कहा है तब वे धीरे या जल्दी मिलेंगे ही। उसके लिए इस समय विचार क्या ?

केसर कुछ अपने मुखको बिगाड कर बोली—ऐसा न होगा, मैं तुम्हारी साग भाजी खानेवाली गृहिणी नहीं हूं जो जब मनमें आयगा तब देदेंगे।

किसनचन्दको आशा तो यह थी कि केसरकी बोल चालसे उसे कुछ शान्ति मिलेगी। पर वहां तो उल्टा ही हुआ। उसके इस प्रकार वाक्य सुनकर किसनचन्दने कुछ रोषभरे शब्दोंमें कहा—केसर! क्या तुझे अपनी वह दशा, जिसमें एक दिनके खानेका तक फाका पडता था, फटा टूटा और सैंकडो जगह सीया हुआ वस्त्र पहरना पडता था, याद है ? एक बार धर्मको बीचमें रखकर विचार देख कि उस वक्त किसकी कृपासे तू आज इस दशाको पहुंची है ? यह वैभव किसके अनुग्रहका फल है ?

यह कठोरता केसरसे न सही गई। वह एक जहरीली नागिनकी तरह फुंकार कर बोली—किसनचन्द! धर्म ? क्या तुम्हें मुझे धर्मका भय है ? यदि ऐसा होता तो क्या मैं अपने कुलकी पवित्र मान मर्यादाको जलांजलि देकर जीवनके सार—अनमोल—अपने सतीत्व

रत्नको तेरे हाथ दे डालती ? और तू अपनी विवाहिता, सुशीला, सती पत्निको छोड़कर चोरकी तरह छुप छुपकर उसका अप हरण कर पाता ? यह धर्मकी दुहाई तुम्हारे मुहँपर नहीं शोभती।

केसरकी इस प्रकार कठोर बोल चालसे किसनचन्दने प्रचण्ड वायु-वेगसे ताडित वृक्षकी तरह होकर भी लज्जासे नीचा मुख कर लिया। उसके मनमें नाना तरहके विचार आने लगे। किसनचन्द-की यह हालत देखकर रतनचन्दने कहा—किसनचन्द! स्त्रियोंका मन बडा ही शंकित रहता है। केसर आपको दो दिनसे न देखकर ही इतना उलहना दे रही है। खैर, कल आप जरूर ही इसे रकमें दे देना।

सुनकर किसनचन्दने हँसकर कहा—केसर! यदि यही तेरा मनोगत भाव है तो तू निश्चय समझ कि तुझे छोडकर और किसीकी मूर्ति अब इस हृदयमें स्थान न पानेकी। मैं तो सब तरह अपनी मालकिनी तुझे ही बना चुका हूं। तू अपने इस अभिमानको छोड।

केसर भी किसनचन्दपर अपने कटाक्षशर चलाती हुई बोली—आपका विश्वास ठीक है। मैं सच कहती हूं—जब आपको न देख पाती हूं तब मेरा चित्त बडा ही व्याकुल हो उठता है। अब आप एक काम कीजिए, आपकी जो कुछ धन सम्पत्ति है उसे मेरे नामपर कर दीजिए। कारण—ऐसा होनेपर आपको फिर यहीं बहुधा रहना पडेगा और मैं आपकी सेवा चाकरी भी अच्छी तरह कर सकूंगी। अब मुझे घडी भर भी आपके न देखनेपर चैन नहीं पडता।

किसनचन्द—क्या मैं अपनी सब सम्पत्ति तुझे देकर फिर तेरा मुख ताकता फिरूंगा ?

केसर—तब जान पडता है कि आपका मुझपर जो प्यार है वह नाम मात्रका है।

इसी समय रतनचन्दने केसरके कानमें कहा कि केसर! हां यह याद रखना कि आधी सम्पत्ति तेरी और आधी मेरी है। मैं इन्हें फुसलाकर सब तेरे ही नामपर लिखवाए देता हूं।

बूढे किसनचन्दने अपना विश्वसनीय बन्धु समझ कर रतनचन्दसे पूछा—भाई! इस विषयमें तुम क्या सलाह देते हो? क्या तुम ऐसा करना अच्छा समझते हो?

रतनचन्द—मैंने इसी विषयमें अभी केसरके कानोंमें कहा है। जो यह कहती है उसके सब विषयमें तो मेरी सम्मति नहीं है, पर हां! जमीन, जगा छोडकर थोडा बहुत जो नकद हो उसके देदेनेमें कुछ हानि नहीं जान पडती। और यह भी तो बात है कि जबतक हम हैं तबतक केसरके पाससे रुपया जा ही कहां सकता है? स्त्रियोंका मन ही तो है, जैसे उन्हें सन्तोष हो वैसा करना ही उचित है।

किसनचन्द—नगद रुपया अब मेरे पास कितना होगा, कुल पचीस तीस हजार।

केसर पचीस तीस हजारका नाम सुनकर किसनचन्दके पास सरक आई और कहने लगी कि मुझे तुम रुपया दे भी दोगे तो वे चले तो न जायंगे? आखिर रहेंगे तो तुम्हारे ही न? मैं तो केवल इस लिए कहती हूं कि ऐसा होनेसे फिर तुम्हें प्रति दिन देख सकूंगी। मेरा मन भी शान्त रहेगा।

किसनचन्द—कुछ भी हो, पर समझ कर काम करना अच्छा है।

केसर—करना ही नहीं, किन्तु इसी समय करना पडेगा।

किसनचन्द--इस समय मैं क्या कर सकता हूं ? मेरे पास नगद रुपया कुछ नहीं है। किन्तु कम्पनीका चेक है। कल उसे मैं लाकर तुझे दे सकूंगा।

केसरने आग्रहके साथ कहा--हां देखिये, भूलियेगा नहीं। कल कुछ वन्दोवस्त करना ही पडेगा।

इतनेमें रतनचन्द वोल उठा कि ठीक है। कल सब कुछ ठीक ठाक कर दिया जायगा। जब तुझसे कहा है तो वह किया ही जायगा। एक साथ इतना आग्रह भी ठीक नहीं।

खुशामदी रतनचन्दकी चतुरतासे किसनचन्द केसरकी सौन्दर्य--राशिके मोहमें फँसकर वोल उठा कि हां कल ही सब वन्दोवस्त कर दिया जायगा।

संसारमें सच्चे हितैषी वन्धुका पहचानना वडा कठिन है। आज जो तुम्हारे इशारे मात्रसे तुम्हारी आज्ञाका पालन करता है, वही कल तुम्हें शत्रुके हाथ सौंप देनेमें कुछ आगा पीछा न करेगा, उसे कुछ भी चिन्ता या शर्म पैदा न होगी और न वह दुखी होगा। इसीसे कहा जाता है कि हृदयद्वार खोलकर किसीको मनका भाव देनेके पहले परिचय द्वारा उसके भावका जानना वहुत आवश्यक है। विना पूर्ण विश्वास पाये अपनेको दूसरोंके हाथ सौंपना भारी भूल करना है।

कन्हैया पीछेकी खिडकीसे ये सव वातें सुन रहा था। वह केसरके प्रस्तावपर सन्तुष्ट होकर विचारने लगा कि कल ही अपने कार्यके सिद्ध होनेका समय है। यदि छिपकर ये वाते मैं न जान पाता तो कभी संभव नहीं था कि कार्य इतना जल्दी सिद्ध

होता। यह विचार करते करते वह नेमिचन्दके पास पहुंचा। उसे देखकर नेमिचन्दने बडी उत्कंठासे पूछा कि क्या हाल है? इस प्रकार दुःख अब और कितने दिन देखना होगा?

कन्हैयाने केसर और किसनचन्दमें जो जो बातें हुई थीं वे सब नेमिचन्दसे कह सुनाई।

मोह! तू बडा ही बली है। तूने अनादिकालसे बेचारे दुर्बल जीवोंके हृदयपर अपना पूर्ण अधिकार कर रक्खा है। तूने उन्हें अनन्त अन्धकारसे ढक दिये हैं। तेरी अप्रतिहत मोहिनी शक्तिका नाश करना सर्व साधारणके लिए बडा ही कठिन है।

---

(९)

मद।

वह रात्रि, जिसमें केसरको देवपुरके जमीदारसे प्रति दिन सौ रुपया और किसनचन्दके पचीस तीस हजारके चेकके पानेकी आशा हुई थी, रतनचन्दको अत्यन्त अच्छी जान पडती थी। क्योंकि इसके पहले उसने किसचन्दके धनपर हाथ फेरनेकी बहुत कुछ कोशिश की थी, पर वह सफल मनोरथ नहीं हुआ था। आज केसरके प्रस्तावसे वह बहुत खुश हुआ। उसकी आशा पूरी हुई।

बादमें दोनों आनन्दसे उन्मत्त होकर उसके साथ मद्यपान करने लगे। केसर भी उनकी इच्छा पूरी करनेके लिए स्वस्त्रीकी तरह उनका चित्तविनोदन करने लगी। उसके ऐसे भावोंको देखकर किसनचन्द विचारने लगा कि केसर मुझे बहुत चाहती है, मुझपर उसका प्रेम अटल है। मुझे दो दिनसे न देखकर ही उसने ऐसा किया था। इस समय

अपना चेक इसके नामपर करा देनेसे कुछ हानि होनेकी संभावना नहीं है। किन्तु इतनी कृपासे वह मेरी खरीदी हुई दासीकी तरह हो जायगी। केसरकी भावना कुछ और ही थी। वह विचारती थी कि जब किसनचन्द चेकको मेरे नामपर कर देगा तब देवपुरके जमींदार महाशयकी सहायतासे इसे यहांसे निकाल दूर कर दूंगी। केसर समझती थी कि जबतक अपने सौन्दर्यको सुरक्षित रख सकूंगी तबतक ही किसनचन्दका आदर सत्कार और धन कमानेका रास्ता साफ करती रहूंगी। रूपराशिके नष्ट हो जानेसे सब ही मुझसे घृणा करने लगेंगे। ऐसी जगह न उसकी, किन्तु कुलाङ्गना मात्रकी लालसा प्रेमकी अपेक्षा धन प्राप्तिके लिए अधिक प्रबल रहती है। केसर अपने इन सब भावोंको छुपाकर अत्यन्त सीधे साधे अन्तःकरणसे किसनचन्दको सन्तुष्ट करने लगी। किसनचन्द भी मद्यसे मत्त होकर केसरके साथ आनन्द विनोद, प्रेमालाप करने लगा।

धीरे धीरे ऊषा देवी श्वेतवस्त्र पहन कर तमोमयी रजनीका अन्धकार नष्ट करने लगी, वन-विहङ्ग मधुर-स्वरसे परमात्माके गुणोंका गान करने लगे, पूर्वाकाशको आरक्त बनाकर दिनमणि अपनी किरण-राशिको चारों ओर विस्तृत करने लगे और सब जीवोंने निद्रादेवीकी गोदका सहारा छोडकर अपने अपने कर्तव्य कर्ममें मनको लगाया। हां केवल न लगाया तो हमारे किसनचन्दने। वे तो शराबके नशेमें चूर होकर हंसतूल-शय्यापर बेसुध पडे हुए हैं।

केसरने केवल किसनचन्दके आग्रहसे थोडासा नशा किया था। वह अपने चैतन्यको न खो बैठी थी। धनकी लालसासे उसका

हृदय लहराते हुए समुद्रकी तरह तरङ्गित हो रहा था। इसीलिए शान्तिदायिनी निद्रादेवी उसपर अपना साम्राज्य स्थापन न करने पाई थी। यही अवस्था रतनचन्दकी भी थी। केसरने वडी उत्कण्ठा-से उससे कहा—रतनचन्द! समय अधिक हो गया है, कलवाला काम जल्दी हो जाय वैसा उपाय कीजिए।

रततचन्द बोला—केसर! जब इस मामलेके बीचमें मैं पडा हूं और किसनचन्दने भी अपने आप स्वीकार किया है तब तू डरे मत। पर हां याद रखना कहीं मेरी बात भूल न जाना?

केसरने कहा—ऐसा विचार मनमें भी न लाइए। आपकी कृपाका तो यह सब फल ही है। रतनचन्द! तुम्हारा उपकार मैं इस जन्ममें न भूलने की।

समय किसीके आधीन नहीं। दिन धीरे धीरे चढ़ने लगा। पर किसनचन्दकी नींद अभीतक न टूटी। यह देख केसरने उसे जगाया और वडे सम्मानके साथ अपने यहीं स्नानादिके करनेकी प्रार्थना की। नहीं जान पड़ता कि केसरने पहले भी कभी किसनचन्दका इस प्रकार आदर सत्कार और इस प्रकार अनुनय, विनय किया था? किसनचन्दने भी केसरके बीती रात्रिके प्रस्तावकी इस तरह रक्षा की थी? जो उसके कहनेसे वह सन्ध्याको अपने घरसे दश दश हजारके तीन चेक ले आया। उन्हें देखकर केसरकी माके आनन्दकी सीमा न रही। उसे एक चिन्ता हुई कि उन्हें केसरके नामपर न लिखे जानेके पहले कहीं यह हाल देवपुरके जमींदारको ज्ञात न हो जाय और वे यहां न आ जायँ, इसलिए वह मकानके दरवाजेपर जाकर बैठ गई।

उधर पतिपरायणा बेचारी रंभाका हितैषी कन्हैया अपने निश्चयके अनुसार अपने एक नौकरको साथ लेकर वहां उपस्थित हुआ। उसे देखकर बुढिया वडे आदरके साथ बोली—आप आये! बड़ा अच्छा हुआ। पर आज केसरकी तबियत तो बडी खराब हो रही है, उठ बैठकर बात तक भी नहीं कर सकती।

कन्हैयाने कुछ उदास होकर कहा—तो क्या आज हमें निराश होकर लौट जाना पडेगा? आज तो मैं केसरके लिए बहुत कीमती एक जोडी कड़े लाया हूं। ऐसी जोडी उसके पास तो तुमने स्वप्नमें भी न देखी होगी?

बुढ़ियाने कहा—इसका विचार क्या? आप जमीदार हैं। जब आपके पदार्पण इस घरमें हुए हैं तब एक जोडी ही क्या परन्तु प्रति दिन एक भूषण केसरको पहरनेको मिलेगा। यह तो मैं पहले ही सोच चुकी थी। हां दिखाए तो वह जोडी कैसी है?

कन्हैयाने कहा—यह नौकर तुम्हें देता है, तुम जाकर केसरको देना, इसे पहन कर केसर बडी प्रसन्न होगी। उसकी अस्वस्थता भी मिट जायगी। तबमें आज जाता हूं, यह कहकर कन्हैयाने अपने नौकरको कडे जोडीके देनेका इशारा किया।

सुनकर बुढिया नौकरके पास सरक आई। उसने केसरकी माके हाथमें एक जोडी कड़े और पांवमें बेडी पहारा दी और कन्हैयाने एक तेज छुरी निकालकर कहा—चिल्लाना मत, जो चिल्लाई कि इसी समय जानसे मार डालूंगा। मेरे हाथसे तेरा छुटकारा नहीं है। हां चुपचाप रहेगी तो तुझे कुछ तकलीफ न दी जायगी।

छुरीके देखते ही बेचारी बुढियाके तो होश उड गये। वह डरके मारे कांपती कांपती मूर्छित होकर धडामसे पृथ्वीपर गिर पडी।

(आगेके अंकमें समाप्त)

साहित्यसम्मति।

श्रुतावतार—श्रीइन्द्रनन्दि-सूरिकृत संस्कृत ग्रन्थका मराठी अनुवाद। प्रकाशक-श्रीयुत रावजी सखाराम दोसी शोलापुर। कीमत तीन आने। पुस्तक प्रकाशकसे प्राप्त।

इसके प्रारंभमें छह काल, उनकी स्थिति और उनमें होनेवाले मनुष्योंकी आयु, और उनके शरीरकी ऊँचाईका वर्णन किया गया है। इसके बाद चौदह कुलकरोंकी उत्पत्ति, उनके समयकी सृष्टि-स्थिति, चौवीस तीर्थकरोंका समय, उनकी आयु और शरीरकी ऊंचाई-का उल्लेख किया गया है। भगवान् महावीरके विषयमें लिखा है कि जब उन्हें केवलज्ञान होगया परन्तु गणधरके न होनेसे उनकी दिव्य ध्वनि न हुई तब उनका शिष्य बनकर इन्द्रने गौतमसे, जो कि उस समय अच्छा विश्रुत विद्वान् था, नव पदार्थ, सप्त तत्व, पञ्चास्तिकायके सम्बन्धमें प्रश्न किया। गौतम उस अजब ढंगके प्रश्नको सुनकर बडा चकित हुआ। उसने इन्द्रसे अपने गुरुका परिचय पूछा। उसने अपनेको वर्द्धमान् भगवान्का शिष्य बतलाया। सुनकर गौतम, यह कह कर कि हां! उस ऐंद्रजा-लिकका तू शिष्य है, तो तुझसे मैं क्या वाद करूं, चल अपने गुरूके पास ही, उसके साथ गया। वह जब समवसरणके पास

पहुँचा और उसे मानस्तंभ दीखा तब उसका सब अभिमान जाता रहा। वह उसी वक्त भगवान्‌से दीक्षित होकर उनका गणधर हो गया। भगवान्‌की भी दिव्यध्वनि हुई। उन्होंने संसारके लिए पवित्र उपदेश किया। उसी दिनसे उनका शासन आजतक चला आता है। उन्हें निर्वाण हुए २४ ३९ वर्ष बीत चुके हैं।

इसके बाद—श्रुतावतार किस तरह हुआ? इसके सम्बन्धमें वर्द्धमान्‌के बाद होनेवाले केवली, श्रुतकेवली, अङ्गधारी ऋषियोंका और उनके समयमें क्रम क्रमसे होनेवाली ज्ञानकी मन्दताका उल्लेख किया जाकर भूतबलिके द्वारा पट्‌खण्ड शास्त्रका लिपिबद्ध लिखा जाना बतलाया गया है। जिस दिन यह ग्रन्थ लिखकर पूर्ण हुआ था वह ज्येष्ठ सुदी पञ्चमीका दिन था। जैनियोंके लिए यह दिन बडे महत्वका है।

पश्चात् ग्रन्थकर्ताने किन आचार्योंके द्वारा किस किस ग्रन्थकी रचना हुई, इसका जयसेन गुरुके समय तकका वर्णन कर ग्रन्थ समाप्त किया हैं। सारा ग्रन्थ लगभग २९० श्लोकोंमें पूर्ण हुआ है। अच्छा होता यदि आचार्य महाराज जयसेनके बाद और अपने समयतक्के आचार्योंका इसमें और भी समावेश करते। अस्तु।

यह ग्रन्थ है तो छोटा, पर जैनियोंके लिए बडे ही महत्वका है। इसे जैनधर्मका संक्षिप्त इतिहास कहना चाहिए। प्रकाशक महाशयने इसे प्रकाशित कर बहुत अच्छा किया। केवल मूल मूल तो पहले भी प्रकाशित हुआ था। पर यह संस्करण उससे कहीं अधिक अच्छा निकला है। ग्रन्थके अन्तमें एक और छोटासा गद्यमय श्रुतावतार तथा श्रुतस्तवन भी लगा दिया है। जैनियोंको इसका प्रचार करना चाहिए।

जीवन्धरचरित्र—क्षत्रचूडामणि काव्यका, हिन्दीपरसे गुजराती अनुवाद। अनुवादक भाईलाल कपूरचन्द साह, नार (खेडा) प्रकाशक—मूलचन्द किसनदास कापडिया। मिलनेका पता " दिगम्बरजैन आफिस " सूरत। कीमत आठ आना।

यह दिगम्बरजैनके छठे वर्षकी पांचवी भेट रूपसे उसके ग्राहकोंको वितीर्ण किया गया है। ग्रन्थ वडा उत्तम है। नीतिका भाण्डार है। जीवन्धरकी कथा वडी मनोमोहिनी और रसीली है। पढ़नेमें वडा दिल लगता है। ग्रन्थकारने चरित्र रूपसे इसका निर्माणकर सर्वसाधारणके लिए वहुत उपयोगी वना दिया है। नीतिका ऐसा ग्रन्थ वहुत कम मिलेगा। इसका हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। पाठकोंको अवश्य पढ़ना चाहिए।

राणी सुलसा—लेखक, मुनि श्रीविद्याविजयजी। जैनशासनके दूसरे वर्षकी भेटमें वितीर्ण। यह एक पौराणिक प्राचीन कथाके आधारपर उपन्यासके रूपमें गुजराती भाषामें लिखा गया है। सुलसाकी कथा रोचक है। लेखकने उसमें जगह जगह शिक्षाका निवेशकर उसे वर्तमान ढंगके अनुसार अच्छा उपयोगी वना दिया है। भाषा सरल और सवकी समझमें आने योग्य है। इस तरहके प्राचीन कथाओंके आधारपर लिखे हुए उपन्यासोंके द्वारा जैन समाजको वहुत लाभ पहुंच सकता है।

पत्रों और समाचारोंका सार।

पुराने पंडितजीकी करतूत—हमारे पास भिण्डसे एक सज्जनका

पत्र आया है । उसमें उन्होंने लिखा है कि मुझे कार्य वश ता० २६ जूनको लश्कर जाना पड़ा था । २७ के प्रातःकाल जब मैं मन्दिरजीमें दर्शन करनेके लिए गया तो मुझे यह देखकर कि बहुतसे नवयुवक शास्त्र बांधे हुए चुपचाप बैठे हुए हैं, बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद उनकी इस प्रकार बात चीतसे, कि चाहे कोई शास्त्र बांचे या बांचे हमें अपना काम कभी बन्द न करना चाहिए, मुझे कुछ आपसी बैर विरोध जान पड़ा। जब मैंने इस बातका पता लगाया तब मुझे इस विरोधके सम्बन्धमें जान पड़ा कि यहांके नव युवकोंने एक सभा और एक पुस्तकालय स्थापित कर रक्खा है। वे उन्हें चलाना चाहते हैं और पंडितजी, जिनका नाम बल्देवदासजी हैं, इन कार्योंको होने देना नहीं चाहते । कारण जब पंडितजी शास्त्र बांचते है तब कोई बात युवकोंकी समझमें नहीं आती तब वे पंडितजी पूछते हैं । पंडितजी उन्हें समझाते नहीं, किन्तु प्रत्युत उन लोगोंसे द्वेष करते हैं । इसी शंका समाधानसे चिढ़कर एक दिन तो पंडितजी पढ़ते पढ़ते बीचमें ही शास्त्र बन्द करके चल दिये थे। बस यही विरोधकी जड़ है। हम नहीं जानते कि पंडितजीको इन लोगोंपर इतना द्वेष क्यों ? मुझे पंडितजीके मुँहसे यहां तक सुनमें आया कि " चाहे हमारे प्राण ही चले जायं, परन्तु इन लोगोंके कार्यों को तो कभी न होने देंगे। " एक जैन धर्मके जानकारके मुहपर ऐसे उद्गार अच्छे नहीं दीखते । क्यों पंडितजी ! ये युवक आपकी कौनसी जायदाद छीने लेते हैं जो आप इनपर इतने बिगड रहे हैं ? भला विचारिए तो कि ये लोग जो कुछ काम करते हैं वह करते तो धर्मकी उन्नतिके लिए ही न ? इसमें तो आपको उनसे सहानुभूति

रखनी चाहिएं, न कि द्वेष। हम आशा करते हैं कि पंडितजी हमारी प्रार्थनापर ध्यान देंगे और इस आपसके विरोधकी जडके मजबूत न होने देंगे जो कि जैनधर्मके अवनतिकी कारण है।

एक और नयापत्र—" भारतनारीहितकारी " नामका एक मासिकपत्र श्रीयुत जिनेश्वरदासजी वैद्य मैनपुरी निवासीने निकालना आरंभ किया है। उसका ज्येष्टका पहला अंक हमें प्राप्त हुआ है। अपने विचार फिर कभी लिखेंगे।

प्रतिमाएं चोरी गई—महुवासे श्रीयुत गणेशलालजी विलाला लिखते हैं कि लक्ष्मणगढके मन्दिरमेंसे १० प्रतिमाएँ चोरी चली गई हैं। किसी भाईको उनका पता लगे तो उन्हें हमें सूचना देनी चाहिए।

शोकजनक मृत्यु—जैनगजटके द्वारा यह जानकर कि श्रीयुत् अमोलकचन्दजी लुहाडाकी मृत्यु हो गई, बडा दुःख हुआ। आप बहुत दिनोंसे जैन जातिकी सेवा जी लगाकर कर रहे थे। जाति आपके ऋणसे ऋणी है। आपके कुटुम्बियोंपर इस आकस्मिक विपत्तिके आजानेसे हम सहानुभूति पूर्वक धैर्यके धारणके लिए उनसे प्रार्थना करते हैं। परमात्मा आपकी आत्माको शान्ति प्रदान करे।

बम्बईके—दूसरे भोईवाडेके मन्दिरजीमेंसे एक चान्दीका सिंघासन और छत्र चोरी चला गया है। पता लगे तो यहां सूचना दीजिए।

बूढे बाबा चल बसे—सत्यवादीके ४–५ वें अंकमें जयपुरके दो बूढोंके विवाह होनेके समाचार प्रगट किये थे। उनमेंसे एकने ९ वर्षकी बालिकाके साथ विवाह करके अपनी स्वार्थ वासना पूर्ण

की थी। पर खेद है कि वे पूरे तीन महीने भी उस बालगृहिणीके साथ सुख न भोगकर बीचमें ही चल बसे और बेचारी निरपराध बालिकाको जीवन भरके लिए रोनेको छोड गये। पवित्र जातिकी छातीपर कैसा घोर अत्याचार? सुनते हैं कि दूसरे बाबा भी थोडे ही दिनोंके महमान हैं। जैनियो! क्या तुम्हें इस गरीब जातिपर कभी दया आयगी? क्या इन घोर पापोंसे उसका पल्ला छुडाओगे? निर्वाणोन्मुख जातिकी सेवा करके कुछ तो अपना कर्तव्य पालन करो! सोचो, तुम मनुष्य हो!

सहायता कीजिए—पालीताणाकी प्रजापर जो भयंकर और हृदयद्रावक विपत्ति आई है उसका हाल पाठक पढ चुके हैं। हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि दिगम्बर जैन समाजकी ओरसे वहांके अनाथ, अपाहिज, दुखियोंको बहुत ही थोडी सहायता दीगई है। अन्य जातीय लोगोंकी दी हुई सहायताको देखकर तो यह कहना पडता है कि ऐसे समयमें तो जैनियोंका परम कर्तव्य था कि वे अपने देशके प्यारे भाइयोंके लिए यथेष्ठ सहायता देकर उनके साथ पूर्ण सहानुभूति बतलाते। अस्तु। अभी समय है। जहांतक बन सके तनसे, मनसे, और धनसे उनकी सहायता करके सच्चे जैनी कहलाइए। देशपर प्रेम बतानेका यही समय है।

चातुर्मास—जैन समाजके सुपरिचित स्वनाम धन्य मुनि हर्षकीर्तिजी और एक श्रीमती नवदीक्षिता युवती आर्यिकाजीका चातुर्मास बडनगरमें हो रहा है। आपका विशेष परिचय आगेके किसी अंकमें देनेकी कोशिश करेंगे।